आजकल

डेढ़ रुपया

दिसम्बर, 1984



कला-प्रदर्शनी

लोकजीवन से जुड़ने की सार्थक कोशिश

—प्रदीप सौरभ

समकालीन भारतीय कला पर पाश्चात्य प्रभाव की चर्चा बराबर की जाती रही है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही समकालीन भारतीय कला में आकारहीनता की बाढ़ सी आई है। आकारहीनता के चलते ही कृतियों की संप्रेषणीयता में भी खासी बाधा पहुंचती है। टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियों और आंखों को प्रिय लगने वाले रंग-संयोजन के अतिरिक्त मनुष्य और विचार दोनों ही आधुनिक कला से गायब हो गये हैं। यथार्थवादी कला-धारा, जो भारतीय कला की मुख्य धारा की है और सहज संप्रेष्ण भी है, से आधुनिक कला ने अपना नाता लगभग तोड़ ही रखा है। ऐसे संक्रामक दौर में कोई चित्रकार यथार्थवादी कला-धारा से अपना रिश्ता बनाता नजर आता है, तो सुखद ही नहीं लगता, बल्कि समकालीन कला की समृद्धि की आशा भी गहरी होती है।

पिछले दिनों नई दिल्ली की श्री धरानी कलादीर्घा में बंबई के युवा चित्रकार रमेश दारजी का ऐसा ही यथार्थवादी काम देखने को मिला। रमेश ने प्रदर्शित अपने किसी भी चित्र का कोई शीर्षक नहीं दिया था। शीर्षक न देने की वजह, बकौल रमेश—शीर्षक चित्रों को चित्रकार के नजरिये से देखने को दर्शक को बाध्य करता है और फिर मेरे काम में अबूझता नहीं है, जो मैं स्पष्टीकरण के लिए शीर्षक दूं।



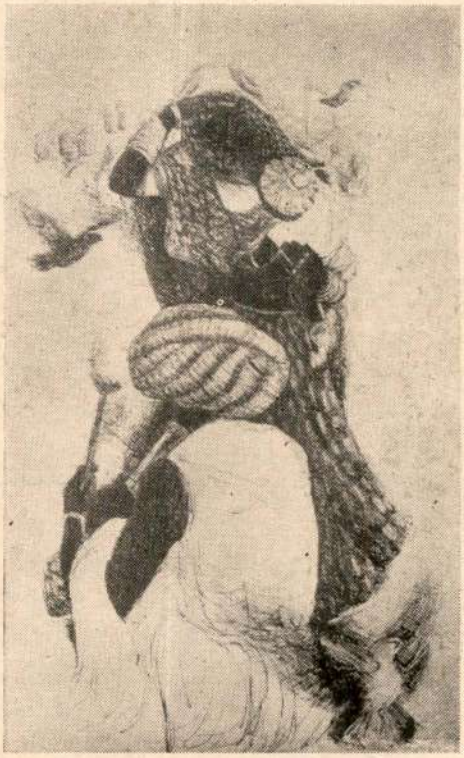
प्रदीप सौरभ

रमेश की एकल प्रदर्शनी के सारे चित्र राजस्थान के लोक-जीवन को विभिन्न कोणों से प्रदर्शित करते हैं। राजस्थान को धूमिल चित्रों में प्रस्तुत करने की रमेश-क्षमता सचमुच काबिले-तारीफ है। बड़ी-बड़ी इमारतों, भवनों और किलों को प्रायः किसी राजा विशेष से जोड़ा जाता है, जबकि रमेश की दृष्टि इनको निर्मित करने वाले लोगों पर ही केन्द्रित हुई है। इसीलिए उनके प्रत्येक चित्र में राजस्थान के वैभव के ये प्रतीक आये तो हैं, लेकिन मनुष्यों के पीछे।

प्रदर्शित सभी चित्र सफेद ड्राइंग सीट पर काली बारीक लाइनों से निर्मित थे। रंगों के प्रयोग के बिना चित्रों में इतनी सघनता है कि हर चित्र अपने में फोटोग्राफिक प्रभाव रखता है।

(शेष पृष्ठ 56 पर)







आजकल

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

संपादक
नरेन्द्र सिन्हा

सहायक संपादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-संपादक
राधेश्याम भारद्वाज

व्यापार व्यवस्थापक : लेखराज बत्रा

सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एडवर्ड बेक

सहायक निदेशक (प्रकाशन) : आर. एस. मुंजाल

आवरण सज्जा : अलका नैय्यर

वर्ष : 40; अंक : 8; पूर्णांक : 484; दिसम्बर : 1984
(अग्रहायण-पौष 1906)

3. सम्पादकीय : लोकतन्त्र की गरिमा

लेख

4. भारतीय अंटार्कटिक अभियान — डा. ब्रजराज किशोर
8. दूरदर्शन के पच्चीस वर्ष — केशव पांडेय
11. साहित्य, संगीत और ललितकलाएं : विकास यात्रा के पड़ाव — डा. रणजीत साहा
24. अभिनय की मोहिनी शक्ति से साक्षात्कार — डा. सत्येंद्र कुमार तनेजा
28. भाखा का पहला व्याकरण — माणिक गोविन्द चतुर्वेदी
30. ऐसे थे हमारे प्रथम राष्ट्रपति — चन्द्रशेखर शुक्ल
38. अजातशत्रु की याद — प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद
41. मोरिशस में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का उद्भव और विकास — प्रहलाद रामशरण
48. हिन्दी के प्रथम समाचार पत्र — डा. जे. एच. आनन्द

कहानियां

16. वैतरणी के पार — मस्तराम कपूर
32. कांटों पर चलते हुए — मुनीश्वर लाल
35. कवि जी — डा. प्रमोद कुमार सिंह

21. कविताएं

इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ, राकेश भ्रमर, सुधांशु रंजन, डा. सुधेश, पद्माशा, राजीव लोचन, कनिका वर्मा, रचना परमार, प्रताप सहगल ।

इसके अतिरिक्त पुस्तक समीक्षा, वातायन, रंगमंच और प्रतिक्रियाएं आदि अन्य नियमित स्तम्भ ।



'आजकल' का जुलाई, 84 अंक देर से मिला। फिर भी 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' में सम्पादकीय टिप्पणी विशेष पसन्द आई। चूंकि आषाढ़ की प्रतीक्षा बड़ी ही आकुलता से करती हूं। क्योंकि, मौसम का मनुहार लेकर/मल्लिका का प्यार लेकर/उज्जैन की उर्वरा-भूमि। काव्य-कुंज कालिदास/की चल पड़ी फुहार/खिल गई कविता कली/आ गया आषाढ़··· मोहन राकेश बार-बार याद आते रहेंगे—'आषाढ़ का एक दिन' को लेकर। चूंकि मैंने भी आषाढ़ की वर्षा की एक-एक बूंद को गिना है उनके साथ कि आषाढ़ में कितनी बार वर्षा हुई, परन्तु आज वो साथ नहीं हैं।

प्रस्तुत अंक में श्री शंकर दयाल सिंह जी द्वारा सर्वेक्षित लेख 'हिन्दी साहित्य को बिहार की देन' पढ़ा। बहुत सारी बातों की जानकारी हुई। खेद इस बात का है कि 'देहाती दुनिया' लिखकर शिवजी ने ग्रामीण परिवेश का सिक्का जमाया, बेनीपुरी ने 'अम्बपाली', 'माटी की मूरतें आदि-आदि···पर, कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आंचल' लिख कर हिन्दी कथा-साहित्य में आंचलिक उपन्यास नाम से नयी प्रवृत्ति की धूम मचाई। और इस 'मैला आंचल' ने हिन्दी साहित्य का प्रथम आंचलिक उपन्यास होने का गौरव प्राप्त किया, जिस पर बिहार को नाज है। काव्य विधा में 'नकेन' (नलिन-केसरी-नरेश) की स्थापना कर प्रपद्यवाद का घोषणा-पत्र जारी करना फिजूल था, वह अज्ञेय से मिला फ्रस्ट्रेशन था, जिससे (प्रपद्यवाद बनाम नकेनवाद) कविता की कोई जमीन तैयार नहीं होती है, अतः मैं इस चर्चा को नकारती हूं। लेखक ने बिहार के साहित्यकारों और काव्यकारों के नाम गिनाने में कुछ ऐसे नामों को गिनाया है—तब भारत यायावर, डी. एन. पटेल सायल और सुरंजन जैसे कवियों को कैसे भूल गये? महिला लेखिकाओं में राजश्री रंजिता, शीला रंजन और अनामिका को कैसे भूल गये? पत्रकारों में दिवाकर, शर्मान्जु किशोर और मिथिलेश सिन्हा जैसे पत्रकारों को कैसे भूल गये? और-तो-और कथाकार राबिन शॉ पुष्प को कैसे भूल गये? बहरहाल श्री शंकर दयाल सिंह जी को इस सर्वेक्षण के लिए बधाई।

—दीपा, छपरा (बिहार)

'आजकल' (अगस्त, 1984) में प्रकाशित लेख 'साधना, स्वदेश-भक्ति और कर्त्तव्यनिष्ठा की त्रिवेणी-केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' में डा. आनन्द नारायण शर्मा जी ने लिखा है कि प्रभात जी के पूर्वज 'महाराष्ट्र' के रहने वाले थे। प्रभात जी का जन्म वर्तमान भोजपुर जिले के आरा नगर में हुआ था। सन् 1929 में केदारनाथ मिश्र ने बी. ए. की परीक्षा पास की थी। जबकि ये सारी सूचनाएं सही नहीं हैं। सही यह है कि प्रभात जी के पूर्वज राजस्थान के 'सवाई माधोपुर' नामक स्थान के रहने वाले थे। बाद में इनके दादा जी किसी कारणवश सपरिवार बनारस (वर्तमान में वाराणसी) चले आये। इनके दादा अरबी एवं संस्कृत के अच्छे विद्वान् होने के साथ-साथ एक कुशल संगीतज्ञ भी थे। इसी कुल के शिरोमणि पण्डित अम्बिका प्रसाद मिश्र के द्वितीय सुपुत्र के रूप में महाकवि प्रभात जी का जन्म 11 सितम्बर, 1907 ई. को हुआ। बाद में अम्बिका जी का स्थानान्तरण पटना कचहरी में हो गया जहां प्रभात जी की आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा आरम्भ हुई और 1924 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक तथा वहीं के कालेज से 1926 में इण्टर, 1928 ई. में बी.ए. तथा 1930 ई. में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

एक अन्य स्थान पर इसी लेख में श्री शर्मा ने लिखा है—"उनके क्रांति-गीतों का संकलन 'ज्वाला' शीर्षक से छपा, जो प्रकाशन से पूर्व जब्त कर लिया गया··।" इस भ्रमित वाक्य से यह स्पष्ट नहीं होता कि 'ज्वाला' की प्रतियां छपने से पूर्व या बाद में जब्त कर ली गयी थीं। जबकि सत्य यह है कि 'ज्वाला' के प्रकाशित होते ही इसकी सारी की सारी प्रतियां प्रेस से ही जब्त कर ली गयी थीं। —सतीशराज पुष्करणा महेंदू, पटना,

'आजकल' के जुलाई अंक से साक्षात्कार हुआ। मेरे एक सहकर्मी बंधु ने इसे पढ़कर आश्चर्य व्यक्त किया, "अरे यार, सरकारी पत्रिका होते हुए भी इतना अच्छा स्तर।" 'आजकल' से प्रथम-प्रथम परिचय उस समय हुआ जब अलीगढ़ में शोध-छात्र के रूप में कार्यरत था। साहित्यिक-सामयिक हलचलों से निष्कासित इस दूर-दराज वाले प्राकृतिक अंचल में इसका सानिध्य विशेष उपादेय लगा।

परन्तु कहानी 'दिल्ली कभी मत जाना' (श्री ललित शुक्ल) बेहद निराश कर गई। कविताओं में 'उसे मालूम नहीं है' श्लाघ्य है। —मधुसूदन, सगाली (अरुणाचल प्रदेश)

'आजकल' का सितम्बर अंक समय पर प्राप्त हुआ। महिला विशेषांक के प्रति जो उत्सुकता थी, वह भी शान्त हो गयी। कृष्णा सोबती के विचारों ने काफी प्रभावित किया। ऋता शुक्ल ने महिला-लेखन और पुरुष-लेखन पर जो विचार किया वह अधूरा रह गया। वह विशिष्ट महिला साहित्यकारों को सामने लाने में नाकाम रही हैं। मदर टेरेसा पर लेखिका के विचार इस अंक की विशिष्ट सामग्री हैं। अनुवादक को बधाई। एक शिकायत है आप से। आप हिमाचली लेखकों के प्रति भेदभाव कर रहे हैं उसे दूर करें और हिमाचली लेखकों को भी नियमित स्थान दें। —स्वरूप सिंह जुर्गा, कांगड़ा (हि. प्र.)

हम क्षेत्र विशेष को दृष्टि में रखकर रचनाओं का चुनाव नहीं करते। 'आजकल' में हिमाचली लेखकों की रचनाएं भी छपती रही हैं। —सम्पादक

सम्पादकीय

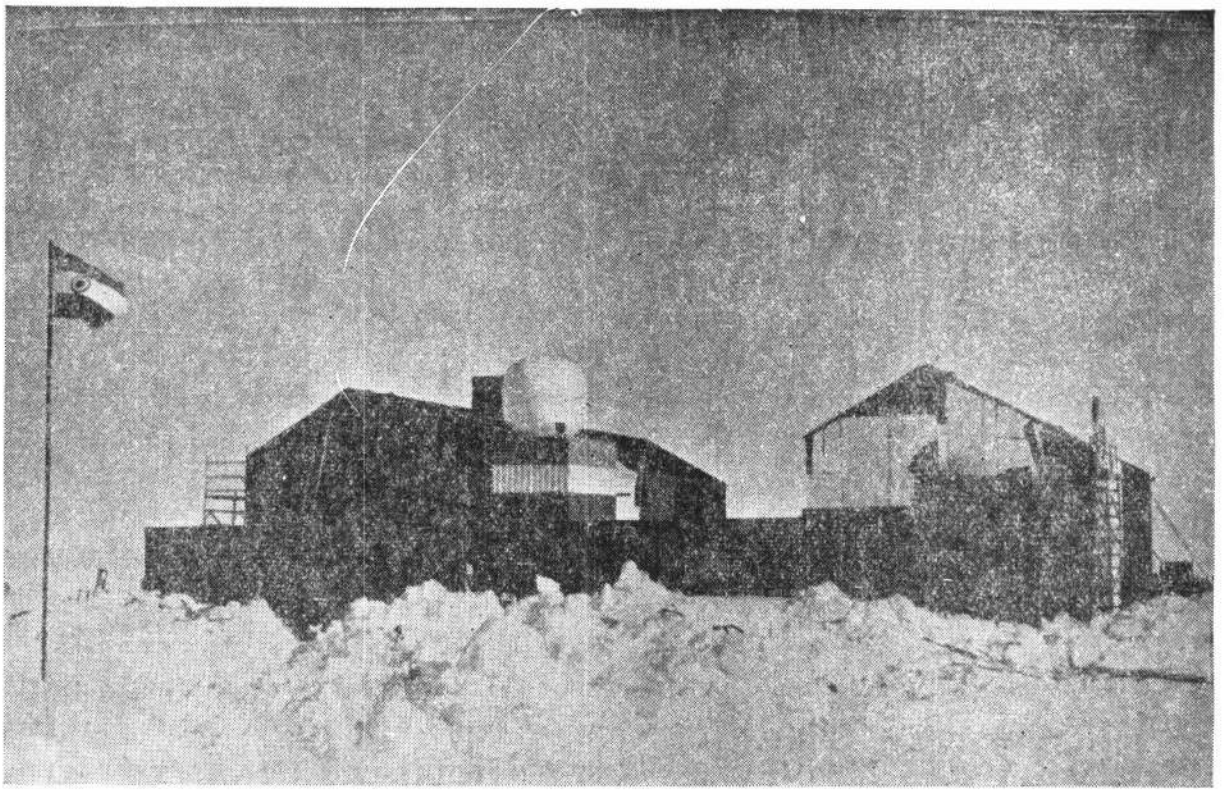
लोकतंत्र की गरिमा

राष्ट्रीय शोक की अवधि समाप्त हो चुकी है, लेकिन श्रीमती इंदिरा गांधी की निर्मम हत्या से देश इतना मर्माहत है कि देशव्यापी शोकसभाओं का सिलसिला अभी समाप्त नहीं हुआ है। देश और विश्व शांति के लिए इतना महत्वपूर्ण था उनका व्यक्तित्व कि बर्तमान पीढ़ी तो क्या, आगे आने वाली पीढ़ियां भी बहुत दिनों तक उन्हें याद किया करेंगी। ऐसी स्थिति में आठवीं लोकसभा चुनावों की घोषणा हुई है। चुनावों के लिए सामान्यत: सामान्य स्थिति की अपेक्षा की जाती है, लेकिन तनाव की स्थिति के बावजूद इन चुनावों की घोषणा से निश्चय ही लोकतंत्र तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं में हमारी प्रबल आस्था मुखर होकर प्रकट हुई है। इससे एक बार फिर यह सिद्ध हुआ है कि भारत में लोकतन्त्र की जड़ें बहुत गहरे पैठ चुकी हैं, जिससे विश्व के सर्वाधिक बड़े हमारे लोकतन्त्र ने सदा शक्ति ग्रहण की है और आगे भी करती रहेगा।

अपनी दुर्गास्वरूप प्रधानमंत्री के निधन से परिव्याप्त राष्ट्र-व्यापी शोक के वातावरण में जब चुनाव हो रहे हैं तो याद आती हैं वे भविष्यवाणियां, जब हमने विदेशी दासता से मुक्त होकर देश के लिए लोकतांत्रिक समाज-व्यवस्था का चुनाव किया था। तब पाश्चात्य भविष्यवक्ताओं ने बार-बार यह कहा था कि अशिक्षा व अज्ञान के गहरे गर्त में गिरे इस देश में यह व्यवस्था सफल नहीं हो सकेगी, लोकतन्त्र शिक्षित और जागृत नागरिकों की व्यवस्था है। वे यह भूल गए थे कि आज़ाद भारत के नागरिक अशिक्षा से भले पीड़ित रहे हों, अज्ञानी नहीं थे, उनमें अपने भले-बुरे की समझ थी, लहू की नदी पार कर प्राप्त की गई स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की ललक थी। हमें गर्व है, काल प्रवाह के उन भविष्यवक्ताओं को झूठा सिद्ध किया है। वही भविष्यवक्ता अब हमें शाबाशी देने लगे हैं कि भारत में "चुनावों के मामले में अनुभव की कमी, अधिकांश मतदाताओं की अशिक्षा तथा अन्य सामाजिक, भौतिक और मनोवैज्ञानिक बाधाओं के बावजूद" निरन्तर चुनाव होते रहे हैं, 'और यदि भारत इस पर गर्व करता है तो यह सर्वथा उचित है', (नार्मन डी पामर)। एक भारतीय चुनाव-विश्लेषक, श्री ए. वी. एम. सिरिसकर ने ठीक ही कहा है, "चुनाव भारत के राजनीतिक जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। यहां चुनाव अवश्यम्भावी माने जाते हैं।" सच, सन् 1952 में जब पहली बार वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए तब सारा संसार चकित होकर आंखें फाड़-फाड़ कर हमारी ओर देखता रह गया था। तब से, आंतरिक और बाह्य परिस्थितियां चाहे जैसी भी रही हों, चुनाव टाले नहीं गए हैं। तीन बार, 1957, 1962 और 1967 में चुनाव समय से हुए और तीन बार, 1969, 1971 और 1980 में समय से पहले। सिर्फ 1976 में लोकसभा की अवधि एक वर्ष बढ़ा दिए जाने के कारण चुनाव वैध रूप में 1977 में हुए। चुनाव सिर्फ हुए ही नहीं, निष्पक्ष ढंग से हुए। स्मरणीय है, तब शासक दल के लिए स्थितियां विपरीत थीं और इनमें पूरे उत्तर भारत से शासक-दल का सफ़ाया हो गया था जिसके कारण केन्द्र में पहली बार विपक्ष की सरकार बनी थी।

वास्तव में, जिन भविष्यवक्ताओं ने हमारे लोकतंत्र की सफलता के प्रति आशंका प्रकट की थी, वे जानते हुए भी यह भूल गए थे कि लोकतांत्रिक व्यवस्था और चुनाव प्रणाली भारत के लिए कोई नयी चीज नहीं थी, इस देश में लोकतंत्र का इतिहास बड़ा पुराना है। ईसा-पूर्व में ही, जब रोम और ग्रीस के लोकतंत्रों का दूर-दूर तक कहीं पता भी नहीं था, उत्तर तथा पश्चिमोत्तर भारत में एकाधिक जगहों पर लोकतांत्रिक शासन की स्थापना हो चुकी थी। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता, डा. ए. एस. अल्टेकर के अनुसार लगभग 3000 वर्ष ई. पू. में ही वैशाली के गणराज्य की स्थापना हो चुकी थी। यह वह समय था जब महात्मा गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म का प्रसार कर रहे थे। वैशाली वाज्जिसंघ की राजधानी थी, और मगधराज अजातशत्रु उसे पराजित करना चाहता था। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसने महात्मा बुद्ध का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहा था। तब उसके मंत्री वस्सकार की उपस्थिति में महात्मा बुद्ध ने बज्जियों की लोकतांत्रिक प्रणाली की प्रशंसा में अपने प्रधान शिष्य आनन्द से जो प्रश्न पूछे, उनसे लोकतंत्र की मूल भावना को बल मिलता है। महात्मा बुद्ध के प्रश्न थे : (1) क्या बज्जियों के जुटाव (सन्निपात) बार-बार और भरपूर होते हैं ? (अर्थात् उनमें बहुत लोग होते हैं ?), (2) क्या बज्जी इकट्ठे जुटते, इकट्ठे उठते (उद्यम करते), और इकट्ठे बज्जीकरणीयों (कर्तव्यों) को करते हैं, (3) क्या बज्जी, बाकायदा कानून बनाये बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते, बने हुए नियम का उच्छेद नहीं करते, और नियम से चले हुए पुराने बज्जीधम्म (राष्ट्रीय कानून और संस्थाओं) के अनुसार मिलकर बर्तते हैं, (4) क्या बज्जियों के जो वृद्ध-बुजुर्ग हैं उनका आदर सत्कार करते, उन्हें मानते-पूजते और उनकी सुनने लायक बातों को मानते हैं, (5) क्या बज्जी, जो उनकी कुल स्त्रियां और कुल कुमारियां हैं, उन पर जोर-जबर्दस्ती तो नहीं करते, (6) क्या बज्जी, जो उनके अंदरले और बाहरले बज्जी चैत्य हैं (जातीय

(शेष पृष्ठ 40 पर)



अंटार्कटिक (दक्षिण गंगोत्री) स्थित स्थायी भारतीय केन्द्र। ग्लास फाइबर और थर्मोकोल से निर्मित इस दो मंजिले ऊष्मारोधी भवन में एक साथ 15 व्यक्ति रह सकते हैं।

भारतीय अंटार्कटिक अभियान

डा. ब्रजराज किशोर

भारतीय अंटार्कटिक अभियान-क्रम के अंतर्गत 'दक्षिण गंगोत्री' की स्थापना और आगे का सिलसिला एक ऐसा महान प्रयत्न है जिसने हमारी समग्र और समन्वित अस्मिता एवं तज्जनित प्रगति का एक नया प्रतिमान स्थापित किया है। यह कार्य हमारी उस संकल्प-शक्ति का प्रतीक है जो हर स्थिति और कार्य को नव्य-भव्य अर्थ से समन्वित करने की सामर्थ्य रखती है। यह वह घटना है जो एक ओर हमारी दुर्दम स्वेच्छा को प्रतिकित करती है, तो दूसरी ओर सर्जनात्मक सफलताओं के एक क्रम के श्रीगणेश को परिलक्षित। सचमुच हमारे वैज्ञानिक निर्माता, सर्जक और रचनाकार हैं। इन्हीं संदर्भों में एक और गंगोत्री—'दक्षिण गंगोत्री' एक नये तीर्थ की संज्ञा को सार्थक करती है। प्राचीन भारत में विज्ञान और धर्म स्रोत अभिन्न थे। हमारे युगद्रष्टा प्राचीन ऋषि-वैज्ञानिकों ने जहां-जहां जीवन जगत और लोक-परलोक को लेकर तत्वचिन्तन, अनुसंधान और प्रयोग किये, वही स्थल कालांतर में तीर्थ कहलाये। आज विशेषज्ञता का युग है और हमारे विभिन्न विभागों के विशेषज्ञ-वैज्ञानिकों ने अपने समन्वित सहयोग से जो एक नया वैज्ञानिक तीर्थ दक्षिण ध्रुव प्रदेश पर स्थापित किया है, वह सर्वभावेन स्तुत्य एवं प्रणम्य है।

प्राचीन सम्बन्ध-सूत्रों का पुनरान्वेषण

आज से लगभग 13-14 करोड़ वर्ष पूर्व अंटार्कटिक के अतिरिक्त दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, श्रीलंका आदि भी भारत के साथ संलग्न थे। इस तरह निर्मित यह विराट महाद्वीप भारत के ही नर्मदातटीय एक प्रदेश 'गोंडवाना' के नाम पर 'गोंडवाना लैंड' नाम से अभिहित हुआ है। मध्यकाल में पृथक्करण और महाद्वीप-अभिसरण की जो प्रक्रिया प्रारंभ हुई उसमें भारत और अंटार्कटिक को वर्तमान स्थिति में ला पटका। आज की तरह अंटार्कटिक हमेशा हिमाच्छादित कभी नहीं रहा। भारत की तरह ही सुदूर अतीत में अंटार्कटिक भी सूर्य रश्मियों का अबाद क्रीड़ास्थल था वहां वानस्पतिक एवं जैविक वैविध्य था। वहां के हिम-आवरण ने लगभग 40 लाख वर्ष पूर्व वर्तमान

पूर्णता प्राप्त कर ली थी। 9 जनवरी, 1982 को प्रथम भारतीय अभियान-दल के वहां अवतरण के साथ ही भारत एवं दक्षिणध्रुव-प्रदेश के प्राचीन सम्बन्ध-सूत्रों के पुनरान्वेषण का एक सुखद सिलसिला शुरू हो गया। इसके जो वैज्ञानिक, आर्थिक और दूसरे परिणाम निकलेंगे वे दूरगामी तो होंगे ही, अखिल मानवता के लिए कल्याणकारी भी।

हिमालय स्थित गंगोत्री से दक्षिण गंगोत्री तक के इस संबंध सेतु का निर्माण हमारी प्राचीन साहसिक सामुद्रिक परम्परा का पुनरावलोकन भी है। 'पेरिप्लस', टालमी, ह्वेनसांग आदि के यात्रावृत्तांत और मोहनजोदड़ो-हड़प्पा से प्राप्त मुद्राओं पर अंकित नाव आदि हमारी सुदीर्घ एवं समृद्ध प्राचीन नाविक-परम्परा की गौरव गाथा कह रहे हैं। हमारे साहसिक नाविक हिन्द महासागर के द्वीपद्वीपांतरों, पश्चिम में सुमेर, इस्लाम, मेसोपोटामिया और पूर्व में चम्पा, बाली, काम्बुज आदि देशों की यात्रायें करते थे। तत्कालीन दक्षिण भारतीय राज्य महान सामुद्रिक शक्ति के रूप में विश्वविख्यात थे। वस्तुतः महासागरों से अपनी अंतिम सीमाओं के रूप में घनिष्ठता बहुत प्राचीन बात है। हमारे पूर्वजों ने अपने साहसिक नाविक क्रियाकलापों से एक समृद्ध परम्परा को जन्म दिया था। यह परम्परा प्रायः अकबर के शासनकाल तक अक्षुण्ण बनी रही, लेकिन फिर त्वरित ह्रास के कारण हमें इसका मूल्य दासता के रूप में चुकाना पड़ा।

अभियान के प्रथम तीन चरण

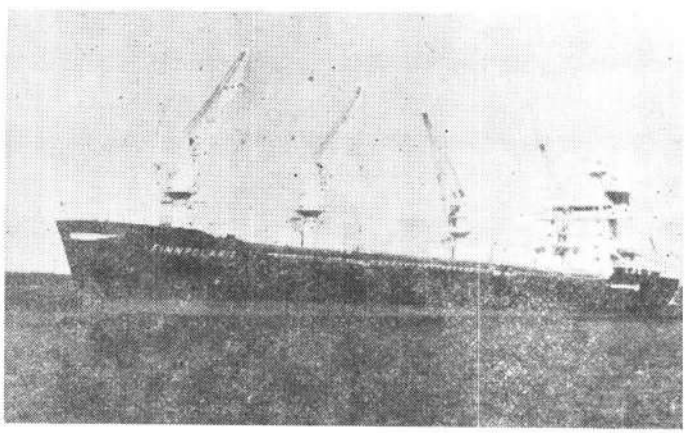
अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी से घिरा हमारा दक्षिणी सीमांत 7,000 किलोमीटर से भी अधिक विस्तृत है। इस सीमान्त पर हमारे अनेक महत्वपूर्ण नगर-बंदरगाह हैं। इस विशाल सीमांत की सुरक्षा और महासागरों के विकास के साथ ही हमारी आर्थिक क्षमता, समृद्धि एवं भावी संभावनाएं घनिष्ठ रूप से जुड़ी हैं। सागर अपने अंतर में तेल, ऊर्जा, खनिज और खाद्य-संपदा को समेटे हुए हैं। विभिन्न विकसित और विकासशील राष्ट्रों की सागरों में बढ़ती निरंतर रुचि के मूल में यही संपदा है। और यह भी सत्य है कि जिसने भी सागर-मंथन किया है, इसके विशाल पक्ष पर अपनी विजय-यात्राएं अंकित की हैं, उसी ने विश्व को अपने अनुकूल प्रभावित-प्रेरित किया है। भारत की सागर-विज्ञापन में वर्तमान रुचि अपेक्षतया नयी है और दक्षिण ध्रुवप्रदेश पर भारतीय अभियान इसी संदर्भ में एक महान राष्ट्रीय प्रयत्न है। तेजी से समाप्त होते भूसंसाधनों ने भारत का ध्यान भी फिर से सागरों की ओर मोड़ा है। इसी के परिणामस्वरूप 24 जुलाई 1981 को प्रधान मंत्री की सीधी देखरेख में 'महासागर विकास विभाग' की स्थापना हुई और दक्षिण ध्रुवप्रदेश में निर्जीव एवं सजीव संसाधनों के अध्ययन और गहरे सागर में अनुसंधान का कार्यक्रम सामने आया तथा भारतीय प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक दक्षता-विशेषज्ञता ने इसे कार्यरूप में परिणत कर दिखाया।

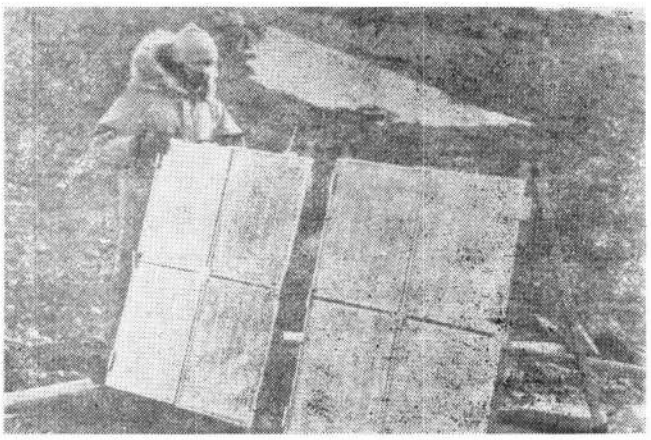
प्रगति का नया प्रतिमान

भारतीय अंटार्कटिक अभियान-शृंखला इसी प्राचीन नाविक परम्परा को पुनर्जीवित करने की एक सार्थक शुरूआत है। हमारी अस्मिता का प्रश्न सीधे हमारे अतीत से जुड़ा है। अतः अपने गौरवपूर्ण इतिहास को हमें दुहराना है, अपनी अस्मिता का प्रसार देशकाल की सीमाओं के बाहर करते हुए हमें नये प्रतिमान एवं कीर्तिमान स्थापित करने है। हमारे प्राचीनतम देवताओं में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण देवता वरुण की वही आयु है जो हिन्द महासागर की है। हम इस महासागर की ही संतान हैं। आज भी यह सागर हमारे भीतर प्राप्य तरल लवण-स्रोत के रूप में लहरा रहा है। अब भी मानव का जन्म और प्रारम्भिक विकास मां के गर्भ रूपी लघु महासागर में ही होता है। इस रहस्य को हृदयंगम करके ही हमारे प्राचीन ऋषियों ने 'समुद्र-मंथन' जैसे मिथक की कल्पना की थी। साफ है कि हमारे विकास और समृद्धि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अंटार्कटिक तक लहराते विशाल हिन्दमहासागर से जुड़ा है।

'ऑपरेशन गंगोत्री' के अंतर्गत प्रथम भारतीय अभियानदल 9 जनवरी 1982 को अंटार्कटिक पर जा उतरा और राष्ट्रीय-ध्वज फहरा दिया। उस दिन पहली बार वहां की अछूती और अनाघ्रात हिमानी भूमि 'जनगण मन अधिनायक जय हे।' के

तीसरे भारतीय अभियान दल को अंटार्कटिक तक पहुंचाने वाला जहाज 'फिनपोलारिश'।





सौर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए लगाई गयीं सौर पट्टियां

समवेत स्वरों से गूंज उठी। अभियान की सफलता के समाचार ने प्रधानमंत्री और पूरे भारत को भावविभोर कर दिया। उसी दिन हमारे ज्ञान-विज्ञान के एक अन्य स्रोत 'दक्षिण गंगोत्री' का प्रादुर्भाव हुआ। इस अभियान दल ने वहां मौसम, रेडियो-तरंग प्रसार, हिमनद, चुम्बकत्व, एअरोसोल मापन, भूविज्ञान, हिमनिधाय विज्ञान, रसायन, प्राणिविज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण प्रयोग किए। वहां से तथ्य एवं आंकड़े संग्रह करने के अतिरिक्त बहुमूल्य नमूने संकलित किये। आते-जाते समुद्री मार्ग में भी अध्ययन और प्रयोग बराबर चलते रहे। इस तरह 21 हजार किलोमीटर और 72 दिन की ऐतिहासिक यात्रा के पश्चात यह दल 21 जनवरी, 1982 को स्वदेश लौट आया।

देखते ही प्रथम सफलता का विजयोल्लास दूसरे अभियान की तैयारी में बदल गया और पूरे संसार के साथ 27 सदस्यों का दूसरा दल 28 दिसम्बर, 1982 को अंटार्कटिक के उसी स्थान पर जा उतरा जहां प्रथम ने अवतरण किया था। यह स्वाभाविक ही था कि इस दल का कार्यक्रम प्रथम अभियानदल की अपेक्षा कुछ अधिक व्यापक होता, कारण कि पृष्ठभूमि तैयार थी और 57 दिन का लम्बा समय कार्य के लिए उपलब्ध था। पहले किये गये प्रयोगों को आगे बढ़ाया गया, कुछ नये कार्यों का शुभारंभ किया गया। मौसम, पर्यावरण, भूसंरचना, आर्द्रता, बादल-दृश्यता और विकिरण, जीवाश्म, जीव-वनस्पति खनिज एव जीव-संपदा सम्बन्धी प्रयोग किये गये। इसी दल ने केन्द्रीय भवन अनुसंधानशाला द्वारा विकसित एवं निर्मित ग्लास फाइबर व थर्मोकोल के ऊष्मारोधी आवसों को खड़ा करके अगले चरण में स्थाई भारतीय केन्द्र के स्थापित किये जाने की आधारशिला रखी।

अंटार्कटिक की इस भारतीय खोजयात्रा के तीसरे चरण की अपनी एक नई नृत्य भंगिया थी, क्योंकि इस समय तक भारत को अटार्कटिक क्लब के 15 वें सलाहकार सदस्य राष्ट्र का दर्जा मिल चुका था। हमारे प्रथम अभियानदल ने जो प्रयोग और अनुसंधान किये थे, वे इतने ठोस और मौलिक थे कि सदस्यता की सभी शर्तें पूरी करने के लिए पर्याप्त थे। अटार्कटिक संधि-राष्ट्र इसकी सफलताओं से इतने प्रभावित हुए कि एक माह से भी कम समय में सर्वसम्मति से भारत को क्लब का सलाहकार सदस्य बना लिया। अपनी वैज्ञानिक-विकास की विजय यात्रा में आज भारत कई विकसित देशों को भी पीछे छोड़ता स्पष्ट-लक्षित किया जा सकता है।

तीसरा अभियानदल अन्य बातों के अतिरिक्त मुख्यत: दक्षिण गंगोत्री पर एक स्थाई अनुसंधान केंद्र और एक पक्कीहवाई पट्टी के निर्माण के लक्ष्य को लेकर गया और उसे सफलतापूर्वक पूरा किया। 83 सदस्यीय यह अभियानदल 3 दिसम्बर, 1983 को गोआ से रवाना हुआ और 27 दिसम्बर को अपने गंतव्य पर पहुंच गया। पहली बार इस अभियान क्रम के अन्तर्गत गैर सरकारी संस्थानों से भी लोगों को सम्मिलित किया गया। दो महिला वैज्ञानिक भी पहली बार दल में सम्मिलित की गई। लगभग तीन माह रहने के बाद तीसरा अभियान दल भारत लौट आया, किन्तु दल के 12 सदस्य शेष नौ महीनों के लिए वहां पीछे रह गये जिससे कि भीषण शीत और अंधकार की स्थितियों में रहकर परीक्षण आदि किये जा सकें। दक्षिण ध्रुव प्रदेश पर रात गुजारने का भारतीय दल के लिए यह प्रथम अवसर है। मई-जून में यहां सर्वाधिक शीत और अधकार रहता है। 31 मई, 1984 को दक्षिण गंगोत्री का तापमान-39° सेल्सियश था। ये लोग चौथे अभियानदल के साथ मार्च, 1985 में भारत लौट आयेंगे। चौथे अभियानदल की तैयारियां भी शुरू हो चुकी हैं। संभावना है कि इस बार किसी न्यूक्लिअर वैज्ञानिक को नेतृत्व का भार सौंपा जायेगा। अब तक की इन सफलताओं में भारतीय नौसेना की 'लोजिस्टिक' भूमिका का भी विशेष हाथ रहा है, लेकिन तीसरे अभियान के दौरान एक दुर्घटना हो गई और एक हेलिकाप्टर इसका शिकार हुआ। अंटार्कटिक पर पहुंचने के चार दिन बाद ही दुर्घटना हुई और दल के दो सदस्यों को चोटें आईं। विंग कमाण्डर मधोक कुछ ज्यादा ही जख़्मी हुए लेकिन मौत के मुंह में जाने से बचा लिये गये।

यह सही है कि हमें अपने अभियान में पर्याप्त सफलता मिल रही है, लेकिन अभी आत्मतुष्टि के लिए कोई स्थान नहीं है। हमें बहुत सजग और सावधान रहना है। जिस तरह देश का धन व्यय हो रहा है, उसी अनुपात में ठोस परिणामों की आशा भारतीय जनता करती है। अभी सब कुछ भला-भला और उत्सव जैसा है, लेकिन ऐसा न हो कि आगे चलकर उत्सव के पीछे अवसाद की स्थिति आये अथवा जनता मोहभंग की स्थिति में से गुजरे। अभियान के कर्णधारों से देश को बहुत आशाएं हैं और इन्हें पूरा करने की उनमें शक्ति एवं सामर्थ्य भी है। बस आवश्यकता है और अधिक परस्पर सहयोग, संयम, अनु-

शासन और टीम-भावना की। इस तरह के दीर्घकालीन एवं दूरगामी प्रयत्नों तथा प्रयोगों में उतार चढ़ाव आना अस्वाभाविक नहीं है।

कुछ सवाल कई संभावनायें

अंटार्कटिक अभियान-शृंखला को जारी रखने में अतुल धन खर्च होगा और निकट भविष्य में किसी चमत्कारी आर्थिक लाभ की आशा भी नहीं की जा सकती। तब जहन में कुछ सवाल उठते हैं यह सब करने की क्या प्रासंगिकता है? क्या उपयोगिता है? कहीं यह हमारे राजनीतिक नेताओं की अंतर्राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं का छद्म रूप मात्र तो नहीं है? इन प्रश्नों का शत प्रतिशत सही समाधान तो आनेवाला समय ही देगा, फिर संकेत ऐसे हैं जो बताते हैं कि वर्तमान शताब्दी के कई अहम और चुनौती पूर्ण भूभौतिकीय मसलों, पृथ्वी वायुमंडलीय सागरीय, जलवायु-विषयक और प्रदूषण सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं को और सही तरीके से समझने में हमें यहां सहायता मिल सकती है। आधुनिक अंधी और दिशाहीन गति और परिवेश को लेकर उठते सवालों के स्याह अंधेरे ने मानव-अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न लगाकर सामूहिक फंडामेंटल शोध और अनुसंधान को अपरिहार्य बना दिया है अंटार्कटिक ही वह प्रयोगस्थल है। जहां विश्व की शक्तियां एक साथ बुनियादी शोध कर सकती हैं। भारत के सामने निजी, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कई सवाल हैं और भारतीय अंटार्कटिक कार्यक्रम का स्तर इनसे जूझने का सार्थक प्रयास है। आने वाले वर्षों में इसकी प्रासंगिकता और भी स्पष्ट होती चली जायेगी।

हमारे धुंधले अतीत को समझने में भी अंटार्कटिक एक महान कुंजी का काम कर सकता है। वहां के हिम आवरण में पृथ्वी के पर्यावरण सम्बन्धी इतिहास के पृष्ठ दबे पड़े हैं। अंटार्कटिक महाद्वीप और वहां के सागरों में समूची मानवता के लिए खनिज एवं जीवित संसाधनों के अक्षम स्रोत बनने की प्रबल संभावनाएं हैं। वहां अनेक धातुओं, प्राकृतिक गैस, तेल आदि के विशाल भंडार होने का पता चला है। अंटार्कटिक का तटीय क्षेत्र संसार के समस्त सागरों का समृद्धतम जैविक क्षेत्र है। यहां की प्रमुख निधियों में सेश्रिम्प जैसा जलचर जीव क्रिल है। प्रोटीन समृद्ध यह जीव सोयाबीन से भी कहीं आगे है। इसकी आर्थिक, व्यावसायिक और खाद्य सभावनाएं अत्यंत आशाप्रद हैं, लेकिन अभी तक इसका सही आकलन होना शेष है। दक्षिण ध्रुव का विशालतम हिम-आच्छादन बातावरण में ताप और आर्द्रता विसर्जित करता हुआ तूफानों और मौसमी वर्षा को जन्म देता है, पृथ्वी के ताप में संतुलन रखता है और भारत के मानसून और मौसम को असाधारण रूप में प्रभावित-



तीसरे अभियान दल की दो महिला सदस्याएं कुमारी आदिति पंत और कुमारी सुदीप्ति सेनगुप्ता

प्रेरित करता है। एक भारतीय सागर एवं मौसम ज्ञानी के लिए जिसकी हिन्द महासागर में गहरी रुचि स्वभाविक है, अंटार्कटिक हिम आदि का अध्ययन-विश्लेषण विशेष महत्व और मूल्य का है। प्रदूषणमुक्त यह प्रदेश एक ऐसा संदर्भ-बिन्दु मानव को प्रदान करता है, जहां से प्रदूषण सम्बन्धी परिवर्तनों को सरलता से मॉनिटर किया जा सकता है। मौसम परिवर्तन की प्रक्रिया की सही जानकारी के लिए मौसम के विगत इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। विगत सकड़ों सदियों का मौसम सम्बन्धी अभिलेख यहां हिम आवरण के नीचे सुरक्षित दबा पड़ा है। विश्व व्यापी मौसम की भविष्यवाणियों का सही आधार अंटार्कटिक की गहरी और सही जानकारी ही हो सकती है।

अनुकूलन के संदर्भ में भी अंटार्कटिक का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। वहां के समुद्री जीवों में प्राप्य ग्लायकोप्रोटीन एन्टिफ्रिज कम्पाउण्ड का अध्ययन हमारे लिए बहुत लाभकारी हो सकता है। इस ज्ञान का उपयोग मानव ऊतकों, शुक्राणुओं तथा रक्त के लाल कोशों को जमी हुई हालत में सुरक्षित रखने और फसल को पाले से बचाने की समस्याओं के समाधान के लिए किया जा सकता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आने वाले वर्षों में अन्य उद्योगों की अपेक्षा विज्ञान ही अंटार्कटिक का प्रमुख उद्योग रहेगा। जैसा कि प्रत्येक अनुसंधान के साथ होता है, अंटार्कटिक अनुसंधान का मूल्यांकन भी पैसे में नहीं आंका जा सकता, क्योंकि इसके दूरगामी परिणाम आर्थिक मूल्यांकन को बहुत पीछे छोड़ जायेंगे। यह तो एक ऐसी तीर्थयात्रा है जिसमें व्यष्टिमुक्ति और क्षुद्र आर्थिक स्वार्थों की कामना नहीं, सामूहिक कल्याण मानव-अस्तित्व की सुखद स्थितियों की भावना सन्निहित है।

—एफ-34, आई. टी. आई., परिसर,
पूसा, नई दिल्ली-110012

दूरदर्शन के पच्चीस वर्ष

★ केशव पांडेय

"रेडियो और टेलीविजन का महत्व क्या है यह शुरू से मालूम था. जो चीज़ देखने से समझ में आती है वह केवल पढ़ने या बताने से लोगों की समझ में नहीं आती।"

—इन्दिरा गांधी

यह सीधी-सादी बात इतने सरल ढंग से दिवंगत प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ही कह सकती थीं और इस कथन का असर सभा मंच के सामने बैठे हज़ारों श्रोताओं-दर्शकों पर पूर्ण रूप से हुआ था। स्थान : नागपुर, तिथि : 10 अप्रैल, 1982, अवसर : नागपुर दूरदर्शन केन्द्र और आकाशवाणी के राष्ट्रीय चैनल के एक हज़ार किलोवाट क्षमता के ट्रांसमीटर का शिलान्यास !

श्रीमती गांधी ने उक्त अवसर पर अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा था—"दूरदर्शन के संदर्भ में इसमें एक नया (आयाम) डिमेंशन आ जाता है। शिक्षा से तो लाभ होगा ही, शिक्षा को फैलाने में जिसे एक वैज्ञानिक भावना, साइंटिफिक टेम्पर कहते हैं, वह फैलाने में भी बहुत सहायता मिलेगी और राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकीकरण, राष्ट्रीय मजबूती और ये चीज़ें भी और लोगों के बीच पहुंच सकेंगी।"

इसके प्रायः दो वर्षों बाद, 17 सितम्बर, 1984 की संध्या, जब बिजली के हज़ार-हज़ार रंगीन लट्टुओं से जगमगा रही थी, दिल्ली दूरदर्शन के दूसरे चैनल का उद्घाटन करते हुए श्रीमती गांधी ने अपनी बात एक बार फिर दुहराई—अब तक लोग टी. वी. को एक विलासिता (लग्जुरी) का साधन समझते थे। लेकिन अब इसकी शक्ति को सभी तरह से समझा गया है··· यह शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन का एक बहुत शक्तिशाली साधन बन सकता है।

भारत जैसे विकासशील देश के लिए दूरदर्शन मात्र मनोरंजन और विलासिता का साधन नहीं है, इसका एहसास हमारी प्रगति के आयोजकों को पूरी गम्भीरता के साथ इस सदी के सातवें-आठवें दशक में हुआ। और इस एहसास के साथ ही शुरू होती है दूरदर्शन के विकास और प्रगति की कहानी।

यह सर्वविदित है कि हमारे देश में टेलीविजन का जन्म 15 सितम्बर, 1959 को हुआ था और वह भी शुद्ध रूप से प्रायोगिक रूप में। तब से आज तक 25 वर्षों का दूरदर्शन-इतिहास अनेक उतार-चढ़ाव देख चुका है। गरीबी, अभाव, अशिक्षा और अन्धविश्वासों से त्रस्त हमारे समाज में ऐसे तत्वों की कमी नहीं जो प्रगति के प्रत्येक चरण को संदेह और अविश्वास की निगाहों से देखते हैं। उन्नत तकनीकी और विकसित विज्ञान की उपलब्धियों की उपयोगिता पर शंकाएं प्रकट की जाती हैं और कुछ लोग जानबूझकर लोगों को गुमराह करने की चेष्टा करते हैं। लेकिन यह हर्ष का विषय है कि अनेक विघ्न-बाधाओं के बावजूद हमारे देश में जन-संचार के सबसे शक्तिशाली माध्यम टेलीविज़न का विकास धीमी किन्तु अविराम गति से होता रहा है।

1972 से 1982 का दशक दूरदर्शन के इतिहास का ऐसा अध्याय है जिसमें इसका प्रसार पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों दिशाओं में हुआ। 2 अक्तूबर 1972 को बम्बई केन्द्र की स्थापना हुई। श्रीनगर, अमृतसर के बाद बारी आई कलकत्ता, मद्रास और लखनऊ की। देश के महानगरों को दूरदर्शन के फैलाव में प्राथमिकता मिलना स्वाभाविक था। श्रीनगर तथा जालंधर जैसे सीमावर्ती नगरों में दूरदर्शन-स्थापना के अपने कारण थे। लखनऊ का अपना सांस्कृतिक महत्व है और वहां दूरदर्शन केन्द्र की स्थापना की आवश्यकता का एहसास भी सहज और स्वाभाविक ही है। निकट भविष्य में देश के तीन अन्य नगर—बम्बई, कलकत्ता और मद्रास दूसरे चैनल पर प्रसारण आरम्भ कर देंगे। दूरदर्शन के फैलाव की गति, जो अब तक धीमी थी, उसे एक नई शक्ति मिली छठी योजना में जब अर्थशास्त्रियों समाज शास्त्रियों के चिंतन और अध्ययन के फलस्वरूप इस माध्यम में निहित शक्ति का सही मूल्यांकन हुआ और उसके परिणाम स्वरूप इसके प्रसार की एक सुनिश्चित योजना बनी।

1959 से 1961 की अवधि प्रायोगिक थी। 1961 में दूरदर्शन का माध्यमिक तथा हायर सेकेण्डरी शिक्षा में राजधानी-स्थित स्कूलों के लिए एक ऐसे सहायक रूप में इस्तमाल किया गया जिसने इस माध्यम की संभावनाओं को पूरी तरह उजागर किया। विज्ञान, गणित तथा भाषाओं के अध्यापन में दूरदर्शन के सहयोग को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। सच तो यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में दूरदर्शन के सहयोग की राष्ट्र संघ की शिक्षा, समाज और संस्कृति परिषद ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

1965 में दूरदर्शन की नियमित सेवा का प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में सप्ताह के चार दिनों एक-एक घंटे का प्रसारण होता था। 15 अगस्त, 1965 से प्रसारण दैनिक हो गया। ज्ञातव्य है कि उन दिनों श्रीमती इंदिरागांधी सूचना और प्रसारण मंत्री थीं और इलेक्ट्रोनिक माध्यम की सही और सच्ची परख उन्हीं के कुशल नेतृत्व का परिणाम थी। शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के अत्यन्त शक्तिशाली माध्यम की पहचान 1967 के स्वतंत्रता दिवस को कृषि दर्शन के जन्म के रूप में जनता के सामने आयी।

दूरदर्शन के विकासमें एक नया मोड़ आया 1975में जब हमारे देश में भू-उपग्रह के प्रयोग के द्वारा एक अभूतपूर्व कदम उठाया गया। अमरीका के भू-उपग्रह एंटी एस-6 के इस्तेमाल के द्वारा, जो देश को एक वर्ष की अवधि के लिए उधार मिला था, एक साथ छह राज्यों के 2400 गांवों तक दूरदर्शन के कार्यक्रम पहुंचाए गए। इस प्रक्रिया में 1500 घंटों के कार्यक्रम चार भाषाओं में तैयार किये गए। यह बहुत संतोष की बात है कि इस विशाल योजना को देश के सम्प्रेषक, समाज शास्त्री, स्वास्थ्य प्रशिक्षण देने वालों तथा शिक्षा शास्त्रियों ने आशातीत सफलता प्रदान की। भू-उपग्रह संचार प्रणाली की सार्थकता को दूरदर्शन के जीवन में भविष्य में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। अमरीकी भू-उपग्रह के स्वदेश लौट जाने के बाद उससे लाभान्वित क्षेत्रों के हितों की रक्षा के लिए छह प्रदेशों में उतने ही ट्रांसमीटर लगाए गए। इस प्रकार कर्नाटक में सम्बलपुर, मध्य प्रदेश में रायपुर, बिहार में मुजफ्फरपुर और राजस्थान में जयपुर में टी. वी. ट्रांसमीटरों का आविर्भाव हुआ। इसके कार्यक्रम बनाने के लिए हैदराबाद, कटक तथा दिल्ली में भू-उपग्रह केन्द्रों की स्थापना की गई। यह केन्द्र अभी भी कन्नड़, तेलुगु, उड़िया तथा हिंदी कार्यक्रमों के निर्माण में लगे हुए हैं।

पहली अप्रैल 1976 दूरदर्शन के जीवन का एक अविस्मरणीय दिन है। टेलीविजन, जो तब तक आकाशवाणी का एक विभाग था, उस दिन दूरदर्शन के रूप में एक अलग इकाई बना और वहां से उसकी अपनी अलग पहचान बनी। यह कहना गलत न होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर टेलीविजन हमारे देश में काफ़ी देर से आया। 1959 से प्रायः इक्कीस वर्षों तक दूरदर्शन के पर्दे पर हम केवल श्वेत-श्याम चित्र देख सकते थे। 1982 में एशियाई खेलों के समय रंगीन प्रसारण आरम्भ हुआ। यह संतोष का विषय है कि उसके बाद के दो वर्षों में अस्सी प्रतिशत कार्यक्रम रंगीन हो गए हैं। भावी योजना में शत-प्रतिशत रंगीन कार्यक्रम प्रसारित करने की व्यवस्था की गई है और उसके लिए आवश्यक उपकरण सभी केन्द्रों को उपलब्ध कराये जा रहे हैं। रेडियो की अपेक्षा दूरदर्शन बहुत व्यय-साध्य माध्यम है। श्वेत-श्याम के अनुपात में रंगीन कार्यक्रमों का खर्च दस गुना अधिक होता है। भारत जैसे विकासशील तथा आर्थिक रूप से पिछड़े देश के लिए अरबों की राशि व्यय करना आलोचना का विषय हो सकता है किन्तु यदि विकास शिक्षा और सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन में संघर्षरत राष्ट्र के लिए दूरदर्शन की उपयोगिता पर विचार किया जाय तो निस्संदेह इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि दूरदर्शन के विकास और प्रसार के लिए जो भी राशि खर्च की जाय वह न्योयोचित तथा तर्कसंगत होगी।

एशियाई खेलों के दौरान न केवल रंगीन कार्यक्रमों का प्रसारण आरम्भ हुआ बल्कि अनायास ही एक नयी योजना का जन्म हुआ। नवें एशियाई खेल के आयोजन में देश ने अभूतपूर्व कल्पना शक्ति तथा दक्षता का परिचय दिया था। अठारह अलग-अलग स्थलों से 21 खेलों का प्रसारण एक ऐसी चुनौती थी जिसका सामना किसी बड़ी संस्था के लिए भी आसान नहीं था। किन्तु दूरदर्शन ने पूर्ण दक्षता और कुशलतापूर्वक यह परीक्षा उत्तीर्ण की। राजधानी तथा देश-विदेश से आए लाखों दर्शकों ने प्रत्यक्ष अथवा दूरदर्शन द्वारा एशियाई खेल देखे। विश्व के बीसियों देशों को भी खेलों के रिकार्डिंग तथा फिल्में प्रदान की गई। किन्तु देश के सभी भागों से दर्शकों के लिए दिल्ली पहुंचना न तो संभव था न ही अपेक्षित। अतः देश के 20 विभिन्न शहरों में कम शक्ति के ट्रांसमीटर लगाए गए जिन्होंने भू-उपग्रह के द्वारा इन कार्यक्रमों का सीधा प्रसारण किया है। ज्ञातव्य है कि इन बीस ट्रांसमीटरों में से सात देश के पूर्वोत्तर अंचल में स्थापित किये गए थे। दूरदर्शन ने इन बीस ट्रांसमीटरों की स्थापना का काम मात्र दो महीनों में पूरा कर दिखाया। इन ट्रांसमीटरों द्वारा देश के लाखों दर्शकों को एशियाई खेल देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। छठी योजना के आरम्भ में दूरदर्शन के कुल अठारह ट्रांसमीटर थे जिनसे आबादी में पंद्रह प्रतिशत लोगों को लाभ मिलता था। एशियाई खेलों तथा भारत अपने भू-उपग्रह इन्सैट-1 की अन्तरिक्ष उड़ान के संदर्भ में विकास की जिस विशेष योजना का जन्म हुआ उसे जुलाई 1983 में सरकार की स्वीकृति प्राप्त हुई। इसके अन्तर्गत देश भर में, छठी योजना के अन्त तक, ट्रांसमीटरों की संख्या को 1980 तक पहुंचा देने का कार्यक्रम बनाया गया जिससे आबादी के 70 प्रतिशत भाग को दूरदर्शन कार्यक्रमों का लाभ मिल सके। किसी भी विकासशील देश के इतिहास में यह पहला अवसर है जब इतने बड़े भू-भाग के लिए इतने अधिक रिले केन्द्रों के प्रसार का काम हाथ में लिया गया है। यह हर्ष का विषय है कि 15 नवम्बर 1984 तक कुल ट्रांसमीटरों की संख्या 165 तक पहुंच गई। कम शक्ति वाले ट्रांसमीटर 100 वाट क्षमता के होते हैं और इनके द्वारा 25 किलोमीटर के दायरे में कार्यक्रम देखे जा सकते हैं। अधिक शक्ति ट्रांसमीटर एक अथवा दस किलोवाट क्षमता के होते हैं जिनके प्रसारण क्रमशः 40 और 120 किलोमीटर के दायरे में देखे जाते हैं। इस विशेष प्रसार योजना के अन्तर्गत देश के दूर-दराज के इलाक़े, जिनमें आर्थिक तथा अन्य दृष्टि से पिछड़े इलाके भी शामिल हैं, दूरदर्शन से सूचना, शिक्षा तथा

मनोरंजन के कार्यक्रमों का लाभ उठाने लगे हैं। देश तथा विदेशों में इस महती योजना के कार्यान्वयन की सफलता के बारे में संदेह प्रकट किए जा रहे थे। किन्तु दूरदर्शन के अभियांत्रिकी तथा कार्यक्रम विभाग में कार्यरत कार्यकर्त्ताओं ने असंभव से दिखने वाले कार्यक्रम को सम्भव करके दिखा दिया है।

यहां एक अन्य विशेष योजना का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा जो देश के पूर्वोत्तर अंचल के लिए बनाई गई है। यह भू-भाग और यहां के निवासियों की स्थिति देश के अन्य भागों से भिन्न है और यह उचित है कि उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अलग योजना बनाई जाय। इस विशेष योजना के अन्तर्गत असम के सिलचर तथा डिब्रूगढ़ और मेघालय के तूरा नामक स्थान पर 10-10 किलोवाट के तथा शिलांग (मेघालय) आइज़ल (मिजोल) कोहिमा (नागालैंड) ईटानगर (अरुणाचल) तथा इम्फ़ाल (मणिपुर) में एक-एक किलोवाट क्षमता के ट्रांसमीटरों की स्थापना की जायेगी। इनके अतिरिक्त इस अंचल के छः अन्य स्थानों पर 100 वाट की कम शक्ति वाले ट्रांसमीटरों की व्यवस्था भी की गई है। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शिलांग, आइज़ल, इम्फ़ाल, कोहिमा, ईटानगर, सिलचर, डिब्रूगढ़ तथा तूरा केन्द्रों पर कार्यक्रम तैयार करने की सुविधाएं भी दी जायेंगी। असम की राजधानी गुवाहाटी एक बड़े केन्द्र के रूप में शीघ्र ही काम शुरू करने वाला है। इस केन्द्र पर पूर्वोत्तर अंचल के अन्य केन्द्रों के लिए भी कार्यक्रम तैयार किये जा सकेंगे।

भारतीय भू-उपग्रह इनसेट-1 बी, 15 अक्तूबर 1983 से पूरी क्षमता के साथ काम करने लगा है। इसके दो चैनल (ट्रांसपौडर) दूरदर्शन को उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से किसी भी केन्द्र से प्रेषित कार्यक्रम पूरे देश में रिसीव टर्मिनल की सहायता से ग्रहण करके पुनः प्रसारित किये जा सकते हैं। अंतरिक्ष में भू-उपग्रह तक कार्यक्रम प्रेषित करने की व्यवस्था वर्तमान समय में तीन स्थानों पर उपलब्ध है। यह तीन स्थल हैं— अंतरिक्ष विभाग का दिल्ली स्थित धरती केन्द्र (अर्थ स्टेशन), उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर के पास सिकन्दराबाद केन्द्र और अहमदाबाद स्थित मोबाइल वाहन। इन दिनों भू-उपग्रह तक कार्यक्रम प्रेषित करने का कार्य मुख्यतः सिकंदराबाद केंद्र के जरिये होता है। इसके अतिरिक्त डाकतार विभाग ने बड़े पैमाने पर माइक्रोवेव संचार की व्यवस्था की है जिनके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक दूरदर्शन कार्यक्रमों का आदान प्रदान होता है। इस प्रकार भू-उपग्रह तथा माइक्रोवेव के द्वारा पूरा देश एक छोटी-सी बस्ती बन गया है। जहां एक कोने से दूसरे कोने तक कार्यक्रम प्रेषित तथा ग्रहण किये जा रहे हैं।

दूरदर्शन के विकास की कहानी कुछ अन्य ऐसी योजनाओं के बिना अधूरी रह जायेगी जिनका कार्यान्वयन इन दिनों बड़े ज़ोर शोर से हो रहा है। एक ऐसी ही योजना है शिक्षण तथा अंचल विशेष के कार्यक्रमों सम्बन्धी जिसका कार्यान्वयन भारतीय भू-उपग्रह इनसेट-1 बी के माध्यम से हो रहा है। इस योजना के अन्तर्गत देश के छह प्रदेशों को उपग्रह-राज्यों की संज्ञा दी गई है। यह राज्य हैं— आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़िसा तथा उत्तर प्रदेश। इन राज्यों के लिए दो आयु-वर्ग के बच्चों (5 से 8 और 9 से 11) तथा ग्रामीणों के लिए शिक्षा तथा अंचल विशेष से सम्बन्धित दैनिक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। प्रसारण राज्य विशेष की भाषा में होते हैं और इनका संयोजन दर्शकों की आयु तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस काम के लिए हैदराबाद, रांची, राजकोट, नागपुर, कटक तथा गोरखपुर में दस-दस किलोवाट क्षमता के केन्द्र कार्यरत हैं। इन केन्द्रों पर तैयार किये गये कार्यक्रम दिल्ली से भू-उपग्रह तक प्रेषित किये जाते हैं और इन प्रदेशों में स्थित सभी अधिक तथा कम शक्ति वाले ट्रांसमीटर अपने-अपने कार्यक्रम ग्रहण करके उन्हें आसपास के दर्शकों के लिए पुनः प्रसारित करते हैं। प्रत्येक केन्द्र के साथ तीन-तीन ज़िलों का समूह बना दिया गया है जो या तो अपने घरेलू सैटों पर अथवा भू-उपग्रह से सीधे ग्रहण करने वाले विशेष रूप से निर्मित सैटों पर कार्यक्रम देख सकते हैं। ज़िला समूहों का चयन उनके पिछड़ेपन, यातायात के साधनों, स्कूलों तथा पंचायतों और विकास कार्यक्रमों की उपलब्धि के आधार पर किया गया है। प्रत्येक समूह के लिए दूरदर्शन ने दोनों प्रकार के टी. वी. सेटों— घरेलू अथवा उपग्रह से सीधे ग्रहण करने वाले— का प्रावधान किया है। कुल मिलाकर ऐसे सैटों की संख्या आठ हज़ार है।

बच्चों के लिए शिक्षा के कार्यक्रम स्कूली पढ़ाई के पूरक के रूप में होते हैं जिनका पाठ्य पुस्तकों से सीधा संबंध न होकर कहानियों, लोक कथाओं, नाटिकाओं, गीत तथा ऐसी विधाओं से होता है जिन्हें बच्चे आसानी से समझ सकें। इसी प्रकार अंचल विशेष के कार्यक्रमों में खेती, स्वास्थ्य और सफ़ाई, परिवार कल्याण, ज़च्चा-बच्चा की देखभाल, प्रौढ़ शिक्षा पशुपालन, विकास कार्यक्रमों का समावेश होता है। शिक्षा के कार्यक्रम प्रातः काल सवा आठ बजे से प्रारंभ करके दोपहर 12 बजकर 45 मिनट तक बारी-बारी से तेलुगु, सिन्धी, उड़िया, मराठी तथा गुजराती भाषाओं में होते हैं। अंचल विशेष के ग्रामीण कार्यक्रम संध्या पांच बजे से प्रारम्भ होकर रात्रि नौ बजे तक चलते हैं। प्रातः कालीन कार्यक्रम की अवधि 45 मिनट होती है जबकि संध्याकालीन सभा के प्रत्येक कार्यक्रमों की अवधि 40 मिनट रखी गई है। इन विशेष कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण इलाकों के लाखों-करोड़ों निवासी दूरदर्शन से लाभान्वित हो रहे हैं।

इस प्रकार देश में दूरदर्शन ट्रांसमीटरों का एक जाल-सा बिछ गया है। इस व्यापक साधन का लाभ विश्वविद्यालय छात्रों को भी उस योजना द्वारा मिल रहा है जिसका सूत्रपात विश्व-

(शेष पृष्ठ 20 पर)

साहित्य, संगीत और ललितकलाएं
विकास यात्रा के पड़ाव

★ डा. रणजीत साहा

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जहां देश के आर्थिक विकास के लिए योजनाबद्ध ढंग से प्रयास किए गए, वहीं साहित्य, संगीत, नाटक एवं नृत्यकला तथा ललितकलाओं के विकास के लिए तीन अकादमियों की स्थापना की गई। ये हैं— (1) साहित्य अकादमी (मार्च, 1954), (2) संगीत-नाटक अकादमी (1953) और (3) ललितकला अकादमी (1954)। ये अकादमियां स्वायत्तशासी संगठन हैं, तथा अपनी स्थापना के बाद की अवधि में इनकी अपने-अपने क्षेत्र में अनेक उपलब्धियां रही हैं। इस लेख में इनकी गतिविधियों का एक संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

—सम्पादक

साहित्य अकादमी

साहित्य अकादमी ने अपने सक्रिय कार्यकाल के तीस वर्ष पूरे कर लिए हैं। भारत सरकार ने मार्च, 1954 में एक स्वायत्त शासी संगठन के रूप में इसकी स्थापना की थी। भारतीय साहित्य के विकास तथा ऊंचे साहित्यिक प्रतिमान क़ायम करने, विभिन्न भारतीय भाषाओं में होने वाले साहित्यिक कार्यों तथा क्रियाकलापों को अग्रसर करने तथा उनका व्यापक समन्वय करने तथा उनके माध्यम से देश की सांस्कृतिक एकता का उन्नयन करने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही इसकी स्थापना की गई थी। अकादमी अपने संविधान के अन्तर्गत 22 भारतीय अंग्रेजी सहित कुल 22 भाषाओं में अपनी गतिविधियों का संचालन करती है। इस प्रकार भारतीय संविधान में स्वीकृत 15 भाषाओं के अतिरिक्त, जिन भाषाओं को अकादमी ने मान्यता दी है—वे हैं: डोगरी, कोंकणी, मैथिली, मणिपुरी, नेपाली, राजस्थानी तथा अंग्रेज़ी (भारतीय)।

अकादमी ने भारतीय भाषाओं की कालजयी एवं प्रमुख रचनाओं का परस्पर अनुवाद भी प्रकाशित कराया है। इनमें साहित्य का इतिहास तथा समीक्षा संदर्भ ग्रंथ, ग्रन्थ सूची तथा महत्वपूर्ण लेखकों की परिचयात्मक सूची भी सम्मिलित है। भारतीय लेखकों को एक ऐसा ही आकर ग्रंथ **'नेशनल बिबिलयोग्रैफ़ी ऑन इंडियन लिटरेचर'** (1901-1953) चार खण्डों में प्रकाशित है, जिसमें प्रमुख भारतीय भाषाओंकी महत्वपूर्ण रचनाओं का अकारादिक्रम से विवरण दिया गया है। इसी प्रकार का एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ 'हू इज़ हू ऑव इंडियन लिटरेचर 1983' है, जिसमें भारतीय साहित्यकारों का परिचय, उनकी जन्मतिथि, मातृभाषा, जन्मस्थान, प्रमुख प्रकाशित कृतियां, उपाधि एवं प्रशस्ति तथा पुरस्कृत कृतियों की प्रामाणिक प्रविष्टि अद्यतन सूचनाओं के साथ दी गई है।

साहित्य अकादमी 'भारतीय साहित्य का विश्वकोश' (इनसाइक्लोपीडिया ऑन इंडियन लिटरेचर') जैसी महत्वपूर्ण योजना पर भी पिछले कई वर्षों से कार्य कर रही है। आशा है, इस योजना के पूरा हो जाने पर एक महत्वपूर्ण अभाव को दूर किया जा सकेगा।

अकादमी का आरम्भ से ही यह प्रयास रहा है कि महत्वपूर्ण साहित्य न केवल विशिष्ट बल्कि सामान्य पाठक तक पहुंचे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'भारतीय साहित्य निर्माता' (मेकर्स ऑव इंडियन लिटरेचर सीरिज़) ग्रन्थ-शृंखला के अन्तर्गत विभिन्न भाषाओं (अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त) के लगभग 110 नवीन एव प्राचीन साहित्यकारों की जीवनी एवं कृतित्व पर पुस्तिकाओं का प्रणयन किया का जा चुका है और विभिन्न भाषाओं में इसके प्रामाणिक अनुवाद भी उपलब्ध हैं। इन पुस्तिकाओं (मोनोग्राफ़) की कीमत भी बहुत ही कम (चार रुपये मात्र) रखी गयी है और इस लोकप्रिय शृंखला की बहुत-सी पुस्तिकाओं के कई संस्करण प्रकाशित किए जा चुके हैं। मोटे तौर पर प्राचीन (1000 ई. तक), मध्यकालीन (1000-1800 ई. तक) तथा आधुनिक काल (1800 ई. के उपरान्त) में विभाजित इस शृंखला द्वारा व्यापक पाठक वर्ग को लाभ पहुंचा है।

इसी क्रम में विभिन्न भाषाओं के साहित्य का इतिहास ग्रंथ शृंखला के अन्तर्गत अब तक तमिल, तेलुगु, कन्नड़, सिन्धी, बांग्ला, भारतीय अंग्रेजी, मलयालम, राजस्थानी, डोगरी, नेपाली, गुजराती, मैथिली, ओड़िया आदि भाषाओं के साहित्य का इतिहास प्रकाशित हो चुका है। आशा है, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के इतिहास ग्रन्थ भी जल्द ही प्रकाशित होंगे। अकादमी **'इंडियन लिटरेचर'** (अंग्रेजी, द्विमासिक); **'समकालीन भारतीय साहित्य'** (हिन्दी त्रैमासिक) तथा 'संस्कृत प्रतिभा' (छमाही) पत्रिका भी प्रकाशित करती है, जिसमें अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत भाषा-माध्यम से भारतीय भाषाओं के समकालीन सर्जनात्मक साहित्य का नियमित परिचय इसके सुधी पाठकों को मिलता रहा है। कहना न होगा, इन पत्रिकाओं ने साहित्य के

अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया है तथा भारतीय भाषाओं में लिखे जा रहे रचनात्मक साहित्य तेवर को — न केवल भारतीय पाठकों के सम्मुख बल्कि उन विदेशी विद्वानों, पाठकों तथा आलोचकों के सम्मुख भी रखा है, जो यह जानने को सदैव उत्सुक रहे हैं कि आज के भारतीय साहित्य का सर्जनात्मक स्वर और स्वरूप कैसा है।

अकादमी ने भारतीय साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट कृतियों के रचनाकार को वार्षिक पुरस्कार के द्वारा जिसके अन्तर्गत दस हज़ार रुपए की राशि शाल एवं प्रशस्ति पत्र दिये जाते हैं— एक अभिनव प्रतिमान स्थापित किया है। इस योजना के अन्तर्गत वर्ष 1955 से वर्ष 1983 तक लगभग 410 साहित्यकारों को उनकी पुरस्कृत कृतियों के लिए सम्मानित किया जा चुका है। इन कृतियों का सारे देश में स्वागत होता है तथा मूल एवं अनुवाद के माध्यम से पाठक इन कृतियों को पढ़ने को सहज ही समुत्सुक हो उठते हैं।

अकादमी के मुख्यालय, नयी दिल्ली के अतिरिक्त क्षेत्रीय कार्यालयों, बम्बई, मद्रास एवं कलकत्ता में समय-समय पर विचार-संगोष्ठियां, काव्य-पाठ, जन्म-शतवार्षिकी, समारोह लेखक-शिविर तथा कार्यशिविर का आयोजन किया जाता है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) की जन्म-शतवार्षिकी 1961 के अवसर पर आयोजित रवीन्द्र संगोष्ठी के बाद अब तक ऐसी कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियां आयोजित की जा चुकी हैं जो किसी भी संस्था के लिए गौरव की बात हो सकती है। ग़ालिब, प्रेमचन्द, तुकाराम, सुब्रह्मण्यम भारती, समर्थ रामदास, रामायण-संगोष्ठी, बुल्लेशाह, डा. पूरन सिंह, शरच्चन्द्र, कोल्हटकर, श्रीअरविन्द, भादतेंदु हरिश्चन्द्र, भाई वीरसिंह, कुमारान आसान, बाबा फरीद, इक़बाल, नानालाल, अमीर खुसरो, लेनिन, शेक्सपियर, गोपबन्धु दाश, बी. एम. श्रीकण्ठय्या, नारायणराव हुइलगोल तथा टी. पी. कैलासम के बाद अभी हाल में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का सफलतापूर्वक आयोजन किया जा चुका है यह इस बात का द्योतक है कि न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य परिदृश्य को प्रभावित करने वाले साहित्यकारों तथा प्रवृत्तियों को परिरेखित तथा रेखांकित करने के लिए अकादमी सदैव सक्रिय रही है तथा विशिष्ट विद्वानों ने अकादमी द्वारा आयोजित संगोष्ठियों में भाग लेकर इसके संकल्प को गौरवान्वित किया है।

अकादमी द्वारा वरिष्ठ साहित्यकारों को महत्तर सदस्यता से भी सम्मानित किया जाता है। यात्रा अनुदान द्वारा भारत के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को जानने तथा वहां के जीवन को निकट से जानने की सुविधा भी लेखकों को प्रदान की जाती है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी विद्वत-वृत्ति दी जाती है। अकादमी, जैसा कि ज़िक्र किया जा चुका है, एक भारतीय भाषा से अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ भारतीय, भाषाओं से भारतीयेतर भाषाओं में साहित्यिक कृतियों के अनुवादों को प्रोत्साहन देती है या इस क्षेत्र में सहायता करता है इस कार्य में अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं-विशेषकर युनेस्को से-विशेष सहायता मिलती रही है। इस प्रकार के योगदान से न केवल प्रतिनिधि रचनाओं के मूल से अनुवाद ही सुलभ हो पाए हैं बल्कि उन सारे विश्व के पाठकों की भारतीय साहित्य में रुचि बढ़ी है, जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से हमारी कालजयी कृतियों को पढ़ पाने में अब तक असमर्थ थे। साहित्य अकादमी द्वारा बारह सौ से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित किए जा चुके हैं। मौलाना आज़ाद की ग्रन्थावली (चार खण्डों में उर्दू में) के अतिरिक्त ऐसे कई शब्दकोश तथा संदर्भ ग्रन्थ हैं, जिनके कई संस्करण हो चुके हैं।

साहित्य अकादमी का पुस्तकालय भारतीय भाषाओं तथा भारतीय अंग्रेजी का बड़ा ही व्यवस्थित पुस्तकालय है। इससे संबद्ध वाचनालय में सभी भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाएं भी पाठकों के लिए मंगाई जाती है। राजधानी का एक बड़ा पाठक-वर्ग इन सुविधाओं से लाभान्वित होता है।

संगीत नाटक अकादमी

प्रदर्शन मूलक कलाओं के उन्नयन एवं संरक्षण के लिए राष्ट्रीय संस्था संगीत नाटक अकादमी का गठन 1953 में किया गया था। राष्ट्रीय स्तर पर संगीत, नाटक एवं नृत्य कलाओं की विविध शैलियों के विकास हेतु इसका गठन किये जाने के मूल में यही प्रेरणा मुख्य रही कि इन कलाओं में फिर से प्राण फूंका जाय। सभ्य अभिजात समाज में प्रचलित या मान्य कला का ही नहीं बल्कि आदिम जन समूह एवं आदिवासियों के जीवन में रचे-बसे लोक नृत्य-संगीत तथा नाट्य रूपों का भी गौरवपूर्ण संरक्षण किया जाय। यह कार्य तभी संभव होता जबकि संगीत, नृत्य और लोकनाट्य की विभिन्न पद्धतियों के प्रतिनिधि गायकों, नर्तकों एवं अभिनेताओं को व्यापक मंच और मान्यता मिलती और उनके योगदान की भरपूर सराहना होती। जहां तक संभव होता उन्हें पुरस्कार से सम्मानित किया जाता तथा उनकी कठिनाइयों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उनकी सहायता की जाती। कहना न होगा, साहित्य अकादमी ने कलाकारों की आकांक्षाओं के अनुरूप ही अपनी गतिविधियों में सक्रियता दिखाई। इसमें इसे सम्बद्ध क्षेत्रों तथा राज्यों में कार्यरत संस्थाओं तथा राज्य सरकार द्वारा गठित एवं संचालित अकादमियों का सहयोग भी मिला। संगीत नाटक अकादमी की सफलता के मूल में सर्जक कलाकारों, सक्रिय संस्थाओं तथा राज्य सरकारों की सदाशयता का समन्वय ही है।

संगीत नाटक अकादमी द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आरम्भ में दो संस्थाएं—कथक केन्द्र (नयी दिल्ली) तथा जवाहर लाल नेहरू डान्स अकादमी (मणिपुर, इम्फाल) को अंतर्मुक्त किया गया। ये दोनों संस्थाएं — जो नृत्य कला के क्षेत्र में प्रमुख गुरुओं और शिक्षकों के निर्देशन में कार्यरत रहीं, अब

अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की संस्थाएं बन चुकी हैं। जवाहर लाल नेहरू डान्स अकादमी में शास्त्रीय एवं पारम्परिक मणिपुरी नृत्य कला की शिक्षा के साथ-साथ पूर्वांचल की जनजातियों में प्रचलित लोक-नृत्य कला की भी शिक्षा दी जाती है।

कथक केन्द्र, जिसकी स्थापना 1955 में हुई और जिसका पुनर्गठन 1964 में हुआ कथक के साथ-साथ अन्य कला—निकायों यथा कंठ संगीत तथा पखावज और तबला वाद्य शिक्षा की व्यवस्था भी प्रदान करता है। कथक केन्द्र की अपनी प्रस्तुति इकाई भी है, जहां कथक नृत्यकला की समस्त सम्भावनाओं तथा तकनीकी बारीकियों को विभिन्न नृत्य-नाट्य रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत एवं विनियोजित करने का उपक्रम किया जाता रहा है। सर्वश्री बिरजू महाराज, कुन्दन लाल गंगानी, मन्नू लाल शुक्ल तथा श्रीमती रेवा विद्यार्थी के सुयोग्य निर्देशन में ऐसी कई रंग-रचनाएं अब तक मंचित हो चुकी हैं। कई प्रतिभाशाली प्रशिक्षार्थी व्यक्तिगत या व्यावसायिक स्तर पर कुशल नर्तक के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित भी कर चुके हैं। इतना ही नहीं, जिन प्रतिभा सम्पन्न बच्चों में आरम्भ से ही, नृत्य के प्रति अभिरूचि है, उन्हें प्रेरित और प्रशिक्षित करने के लिए यह केन्द्र समुचित प्रशिक्षण, प्रोत्साहन एवं छात्रवृत्ति प्रदान करता है।

गुरु बिरजू महाराज के संरक्षण में कथक नृत्य के मौलिक एवं सर्जनशील नर्तकों का एक महामण्डल-सा तैयार हो चुका है। इस नृत्य-नाट्य रंगमंडल की स्थापना तथा महत्वपूर्ण रंग-प्रस्तुतियों से इस क्षेत्र में नयी आशाओं एवं आकांक्षाओं का संचार हुआ है। इन प्रस्तुतियों में शाने-अवध, कृष्णायन, रूपमती, बाज़ बहादुर, होरी धूममचोरी, कथा रघुनाथ की, हव्वा खातून, लय-परिक्रमा, नृत्यकेलि तथा ऋतु संहार विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार घुंघरू तरंग, त्रिपदी, तालवाद्य-अंजुमन, चौबन्दी तथा कथक प्रसंग आदि लघु-नृत्य प्रस्तुतियों की भी कला-पारखियों ने बड़ी सराहना की है। इस नृत्यमण्डली ने देश-विदेश के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा भी किया और विदेशों से भारत आनेवाले प्रतिनिधि मण्डल को अपनी कला से मंत्र-मुग्ध भी किया।

पिछले दिनों लन्दन में आयोजित भारत-महोत्सव के दौरान पूरे वर्ष तक चलने वाले कार्यक्रमों में—श्री बिरजू महाराज के निर्देशन में 'गुरू शिष्य परम्परा' श्रृंखला के अन्तर्गत एक विशिष्ट कार्यक्रम अभिनीत किया गया था, इसमें शाश्वती सेन, अदिति मंगल-दास तथा दुर्गा आर्य ने सराहनीय नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत किया और समस्त नृत्य-संकल्पना की वहां के पत्रों में विशिष्ट नृत्य-समीक्षकों ने भरपूर प्रशंसा की। इस रंगमंडल में 56 कलाकार थे, जिन्होंने भारतीय नृत्य एवं संगीत के कार्यक्रमों से वहां धूम-सी मचा दी। इसी क्रम में 'महाराज कालका बिन्दादीन कथक महोत्सव' का आयोजन भी नई दिल्ली में हुआ—जिसमें परम्परागत घरानों तथा समकालीन पद्धतियों का शैलियों के विद्यमान गुरु एवं शिष्यों की परम्परा विषय पर कई मनोहारी कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये तथा संगोष्ठी में उनके योगदान की विशेष चर्चा की गई।

जैसा कि उल्लेख किया गया, जवाहर लाल नेहरू डान्स अकादमी भी मणिपुरी नृत्य-कला के क्षेत्र में अपना प्रतिनिधित्व कर रही है और सांस्कृतिक दृष्टि से इसके कार्यक्रम न केवल विशिष्ट बल्कि सार्वजनिक आकांक्षाओं के प्रतीक भी होते हैं। यह संस्था अपने संस्थापक गुरूओं स्वर्गीय अमूबीसिंह तथा अतोम्बा सिंह का मार्गदर्शन प्राप्त कर चुकी है तथा अब तक देश-विदेश की विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं तथा अंतर्राष्ट्रीय महोत्सवों में सफलतापूर्वक भाग भी ले चुकी है। अपनी नृत्य साधना से मणिपुरी नृत्य-कला को अप्रतिम स्वरूप प्रदान करने वाले गुरुओं को सम्मानित करने की एक प्रशंसनीय योजना 26 मई, 1982 को चरितार्थ हुई, जबकि मणिपुरी रास, नाट संकीर्तन, मनोहर साही कीर्तन, पेन ईशी, अरिवावाला, खोंगजोम, पर्वा तथा थीवा हीबा आदि परम्परागत नृत्य शैलियों के 26 वर्तमान गुरू-साधकों का सम्मान किया गया। उनकी सेवाओं एवं योगदान का उल्लेख करते हुए उन्हें प्रशस्ति-पत्र तथा अंग-वस्त्र प्रदान किये गये।

संगीत नाटक अकादमी नाट्य शिविरों, नुक्कड़ नाटक कार्य शाला, कूडियट्टम मेला, ध्रुवपद-मेला, वाद्य-यत्र प्रदर्शनी जैसे समारोहों का आयोजन करती रहती है। हरि-कथा, जन्माष्टमी, रथ-यात्रा तथा ऐसे ही सांस्कृतिक कार्यक्रमों को परम्परागत वैभव के साथ, समय-समय पर सार्वजनिक मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। नेशनल स्कूल ऑव ड्रामा के अस्तिव में आने के बाद संगीत नाटक अकादमी ने परम्परागत नाटकों तथा लोक-नृत्य-मूलक रंग-प्रस्तुतियों के संरक्षण तथा विकास के कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया है। इस थाती को जुगाये रखने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति, आलेख संग्रह, अभिलेखों का संरक्षण तथा छाया चित्रों के आधार पर सुविस्तृत विवरणादि का आकलन किया जाता है। अकादमी के कई विभाग यथा ध्वनि अंकन विभाग, साज-सज्जा तथा वाद्य-यंत्र विभाग इस कार्य के लिए योजना का प्रारूप तैयार करते रहते हैं। विभिन्न संस्थाओं में संगीत एवं नाटक सम्बन्धी शिक्षण, कार्यशिविर, नयी प्रस्तुतियों के लिए आर्थिक अनुदान, स्मारिका तथा ऐसे ही महोत्सवों या कार्यक्रमों के लिए अकादमी सदैव तत्पर रहती है।

अकादमी द्वारा कठपुतली कला, जनजाति कला संस्कृति शिक्षा-अनुदान, संदर्भ पुस्तकालय, यात्रा अनुदान, राज्य की अकादमियों को परामर्श तथा समन्वयन तथा महान कलाकारों के गायन तथा वादन के रिकार्डस तथा महत्वपूर्ण संरचनाओं की धुनें संजोकर रखने के कई कार्यक्रमों को लागू किया जा चुका है। कठपुतली की विभिन्न शैलियों तथा उनकी प्रस्तुतियों का सारा तकनीकी पक्ष तथा देश के दूर दराज में प्रसिद्ध तथा प्रचलित लेकिन विलुप्त प्रायः लोक गाथाओं के आधार पर परम्परागत प्रस्तुतियों का प्रामाणिक आलेख तैयार कर उन

पुर्नजीवित करने का सफल प्रयास किया गया है। यही कारण है कि 'कठपुतली' के कलाकारों को फिर से नयी प्रेरणा मिली है। अभी हाल में (2-4 फरवरी, 1983) ही कठपुतली-महोत्सव का आयोजन किया गया था—जिसमें थोलु बोम्मलता (आन्ध्र प्रदेश), लव-कुश (नई दिल्ली), उसी के और सात दोस्त (उदयपुर), रूस्तम सोहराब (दर्पणा, अहमदाबाद), ढोला मारू (सूत्रधार, नयी दिल्ली) रामायण (कलकत्ता) तथा गोम्बे अत्ता (कर्नाटक) आदि का मंचन हुआ। कठपुतली का नृत्य बच्चों में अब भी बहुत ही लोकप्रिय है और व्यापक प्रेक्षक वर्ग के मनोरंजन का यह सर्वाधिक प्रचलित माध्यम रहा है। संगीत नाटक अकादमी के प्रयास से यह कला देश-विदेश के लोक मंच पर फिर से प्रसिद्धि पा सकी है। इसी तरह आंचलिक या क्षेत्रीय कला शैलियों, नाटकों, तमाशों तथा लोक नाट्य पद्धतियों के संरक्षण तथा प्रदर्शन के लिए, यह अपने संकल्पों के अनुरूप ही सचेष्ट रही है।

अकादमी अपने संदर्भ पुस्तकालय, वाचनालय, ध्वनि-मुद्रिका विभाग (डिस्क लाइब्रेरी) आसावरी (वाद्यवीथिका) तथा संग्रहालय द्वारा स्थानीय पाठकों एवं प्रेक्षकों की सेवा भी कर रही है। 'संगीत नाटक' (त्रैमासिकी) पत्रिका भी पिछले 20 वर्षों से नियमित रूपेण प्रकाशित हो रही है। इन सारे प्रयासों से यह राष्ट्रीय संस्था भारतीय संस्कृति के मूल स्वर और स्वरूप के अनुरूप ही कई नई योजनाएं कार्यान्वित करने जा रही है।

ललित कला अकादमी

भारतीय कला-साहित्य और सांस्कृतिक उपलब्धियां एक ज़माने से विश्व में विशिष्ट स्थान बनाये रखने के बावजूद आवश्यक संरक्षण के अभाव में अपनी अस्मिता खोती चली जा रही थी। भारतीय पुनर्जागरण के बाद, हमने अपनी कला संस्कृति को पारिभाषित तथा अपनी धरोहर के महत्व को समझा तथा इसमें विवाद की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए कि इस क्षेत्र में विदेशी कला-समीक्षकों तथा भारतीय विद्याविदों ने हमारी मनीषा को फिर से झकझोरा। तदनुरूप ललित कला के विधिवत अध्ययन एवं प्रशिक्षण के लिए कई महाविद्यालय एवं कला-केन्द्र खुले। कला और शिल्प की औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद, कई कलाविद एवं समीक्षकों ने न केवल अभिरुचि के स्तर पर बल्कि अध्ययन अध्यापन के साथ-साथ व्यावसायिक स्तर पर भी अपनी जीविका के रूप में अपनाने लगे। इसके साथ ही, भारतीय कला के परम्परागत या रूढ़िवादी स्वरूप का रूप भी बदला। पहले तो पश्चिमी कला की नकल पर, फिर उसके अनुरूप और तदनन्तर उसके समानान्तर आधुनिक भारतीय कला पल्लवित एवं विकसित हुई।

जैसा कि आरम्भ से ही यह स्वीकार किया गया था कि कला के क्षेत्र में सरकार की भूमिका प्रारम्भिक नहीं हो सकती। वह कला के विकास में रूचि तो ले सकती है लेकिन रचनामूलक कला का सम्यक् उत्थान तब तक नहीं हो सकता जब तक कोई गैर सरकारी प्रतिष्ठान इसके लिए मजबूती से कार्य न करे। ललित कला अकादमी की स्थापना में यही मुख्य संकल्प रहा। इसी उद्देश्य के अनुरूप-साहित्य तथा संगीत नाटक अकादमी के साथ-साथ स्वायत्ता सम्पन्न ललित कला अकादमी की स्थापना की गयी ताकि सरकार इसकी गतिविधियों में भी हस्क्षेप न करे। 5 अगस्त, 1954 को मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, तत्कालीन शिक्षा मंत्री, भारत सरकार द्वारा उद्घाटित और उद्बोधित इस अकादमी की ऐतिहासिक कला-यात्रा शुरू हुई। इसके प्रारम्भिक एवं प्रमुख कार्यों में राष्ट्रीय कला-कृतियों की देश के भीतर और बाहर प्रदर्शनी, विदेशी कलाकृतियों की प्रदर्शनी, देश के कलाकारों, चित्रकारों, मूर्तिकारों तथा शिल्पियों का सर्वेक्षण तथा उनकी प्रतिभाओं का समुचित उपयोग एवं सम्मान, प्राचीन भित्ति चित्रों की नकल, प्रकाशन योजना तथा कला-संस्थाओं को मान्यता प्रदान करना तथा उन्हें आर्थिक अनुदान देना।

पिछले तीस वर्षों में आवश्यकता तथा योग्यता के अनुरूप ही, ललित कला अकादमी के कार्यों, दायित्वों तथा गतिविधियों में गुणात्मक अन्तर आया है और आज केवल देश में ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय कला के क्षेत्र में ललित कला अकादमी एक प्रमुख संस्था के रूप में कार्यरत है। अपने मुख्य या केन्द्रीय कार्यालय नई दिल्ली के अतिरिक्त इसके क्षेत्रीय कार्यालय या कलाकेन्द्र लखनऊ, कलकत्ता, मद्रास और भुवनेश्वर में हैं। चण्डीगढ़ एवं जयपुर में भी अन्य क्षेत्रीय कलाकेन्द्रों की स्थापना प्रस्तावित है। इन केन्द्रों से ललित कला अकादमी की प्रदर्शनियों के लिए स्थायी कला दीर्घा तथा दर्शकों के बीच सम्बन्ध बनाने में बड़ी सहायता मिली है। यहां से कला पुस्तकों की बिक्री, कला-सामग्री का वितरण समय-समय पर कलाकार तथा कला-प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर कला-मंडप निर्माण संगोष्ठी तथा स्थानीय कलाकारों का औपचारिक मंच तैयार करना भी सम्भव हो पाया है। इसमें विचारों के आदान-प्रदान में भी गति आयी है और अपने को असुरक्षित या असहाय समझकर एक कोने में पड़ा उपेक्षित प्रतिभाशाली कलाकार अपने को अब व्यापक और वृहत्तर कला संसार से जुड़ा पाता है। उसे अपनी मौलिकता और विशिष्टता को पहचानने तथा उसे उजागर करने की सहज और स्वाभाविक प्रेरणा मिलती है। ललित कला अकादमी समय-समय पर कलाकार-शिविर या कार्यशाला का भी आयोजन करती है ताकि समबद्ध कलाकार या किसी निर्धारित विषय पर विस्तार से चर्चा हो सके तथा अभिरूचि रखने वाले कलाकार और सामान्य नागरिक भी इसमें हिस्सा ले सकें।

वार्षिक कला-प्रदर्शनी, त्रैवार्षिकी कला महोत्सव तथा कला-मेला जैसे महत्वपूर्ण आयोजन अब हमारी संस्कृति और सरोकार

के अंग बन गए हैं। इनमें देश-विदेश के कलाकारों की कला-कृतियां—जलरंग, तैल, एक्रेलिक, ग्राफिक, ड्राय पाइंट, एचिंग मोंटाज, कोलाज, पेस्टल, पेन्सिल, चारकोल आदि विभिन्न वर्गों या खण्ड़ों में विभाजित की जाती है और उन्हें उनकी विशिष्टता के लिए, चयन समिति की संस्तुति के आधार पर पुरस्कृत किया जाता है। मूर्तिकला के अन्तर्गत ब्रोंज, धातु, पत्थर, काष्ठ, पलास्टर या मिश्रित माध्यमों से बनी कलाकृतियों का वर्गीकरण भी उपयुक्त आधार पर किया जाता है। और विभिन्न माध्यमों में कार्य प्रस्तुत करने वाले कलाकारों की कृतियों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। ऐसे भी कई कलाकार हैं जो कई माध्यमों में काम करते हैं और अपनी विशिष्टता या उत्कृष्टता के आधार पर पुरस्कृत या सम्मानित होते हैं। 1985 का वर्ष ललित कला अकादमी के लिए बड़ी व्यस्तता और प्रसन्नता का वर्ष होगा, जबकि तीनों की प्रदर्शनी-वार्षिकी और त्रैवार्षिकी एवं कला मेला का आयोजन किया जायेगा। वैसे इन आयोजनों में भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की अनुपस्थिति सबको अखरेगी क्योंकि वे अपनी गहन व्यस्तता के बावजूद इन प्रदर्शनियों के लिए समय निकाल ही लेती थी। पिछले दिनों चीनी कला तथा शिल्प प्रदर्शनी एवं पाब्लोपिकासो के छापों (लिथोग्राफ्स) की प्रदर्शनी में भी वे यहां पधारी थी और उनके साथ श्री राजीव गांधी भी आये थे। भारत महोत्सव के मूल में भी श्रीमती गांधी की प्रेरणा थी तथा उस अवसर पर ललित कला अकादमी ने दो महत्वपूर्ण खण्डों में प्रदर्शनी का आयोजन किया था—"द जैसचर एण्ड मोटिफ" (18 सितम्बर से 5 अक्तूबर '82) तथा "स्टोरीज सिचुएशन्स" (9 से 31 अक्तूबर" 82) विश्व भर के कलादर्शकों तथा समीक्षकों एवं सूचना-प्रसार माध्यमों ने इसकी प्रशंसा की।

अकादमी के कला प्रकाशनों की भी बड़ी मांग रही है। प्राचीन मध्यकालीन तथा आधुनिक कला-प्रसंगों के आधार पर कई महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किये जा चुके हैं। आधुनिक तथा विशिष्ट कलाकारों पर विनिबन्ध (मोनोग्राफ) भी प्रकाशित हैं, जो कलाकारों के विशिष्ट योगदान के साथ-साथ संक्षिप्त किन्तु संश्लिष्ट कार्य-पद्धति पर भी प्रकाश डालती हैं। इन विनिबन्धों में इन कलाकारों की महत्वपूर्ण कृतियों के चित्रादि भी संलग्न रहते हैं। अब इन विनिबन्धों के हिन्दी संस्करण भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं। अब तक प्रकाशित कलाकारों में कुछ का उल्लेख यहां किया जा सकता है। वे हैं, अमृताशेरगिल, राम किंकर, विनोद बिहारी मुखर्जी, रामकुमार, जामिनी राय, के. एच. आरा, देवी प्रसाद राय चौधरी, शंखो चौधुरी, क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार, चिन्तामणि कर, सतीश गुजराल तथा के. के. हेब्बार आदि।

ललित कला अकादमी ने आरम्भ से ही यह प्रयास किया था कि भारतीय कला की प्राचीन विरासत कला-पारखियों की आंखों से कभी ओझल न हो। ग्रंथ प्रकाशन के साथ-साथ प्राचीन भित्ति चित्रों के उद्धार तथा उनकी अनुकृतियों की अनुप्रतियां भी प्रकाशित की गयी—ताकि लोग इनसे परिचित हों तथा इन्हें अपने घरों में लगायें। बड़े आकार की ऐसी अनुप्रतियों के प्रति लोगों में जिज्ञासा हुई है और भारतीय लघु चित्रों के लिए विशेष अपेक्षा भी जगी है। ऐसे चित्रों को विभिन्न आकारों में प्राप्त किया जा सकता है और उपहार के रूप में अपने बन्धु-बान्धवों को भेजा जा सकता है। समकालीन चित्र शैलियों की भी कई अनुकृतियां इसी प्रकार पत्रपुरी (फोल्डर) में या अलग से प्राप्त की जा सकती हैं।

ललित कला अकादमी ने 1957 से ही "ललित कला" (ओरियन्टल) नाम से अंग्रेजी जनरल का प्रकाशन भी आरम्भ किया था और अब तक इसके 20 से भी अधिक खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इसका सम्पादन (स्व.) रायकृष्ण दास, (स्व.) मोती चन्द्र तथा कार्ल खण्डालावाला जैसे कला समीक्षक करते रहे हैं। इसी प्रकार ललित कला कंटपररी का प्रकाशन भी 1962 ई. में आरम्भ हुआ और अब तक इसके 25 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। 'समकालीन कला' नाम से एक हिन्दी पत्रिका भी शुरू की गयी है, जिसके तीन अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रकार, प्रकाशन के क्षेत्र में भी अकादमी ने उल्लेखनीय तथा स्पृहणीय कार्य किया है तथा देश-विदेश में इन प्रकाशनों की बड़ी मांग रही है। ऐसा इसलिए कहा जा रहा है कि भारत जैसे देश में, महंगे प्रकाशन के प्रति लोगों का उदासीन होना स्वाभाविक ही है। कला-संबंधी पुस्तकों के प्रकाशन में प्रकाशकों की बहुत रुचि नहीं होती। प्रकाशन व्यय तथा पाठकों की सीमा को ध्यान में रखकर भी अकादमी ने अपने प्रकाशन-स्तर और संकल्प को बनाये रखा है, जो सराहनीय कार्य है। अकादमी का पुस्तकालय बहुत ही सम्पन्न है और पाठकों को अपने संग्रह से चमत्कृत कर सकता है।

—साहित्य अकादमी, रविन्द्र भवन
35, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-1

वैतरणी के पार

★ मस्तराम कपूर



तीन साल बाद बड़ा बेटा अम्मा को मना कर घर ले आया। अम्मा को लगा उसके बुरे दिन बीत गए और फिर पूतों वाली हो गई। बड़े बेटे के घर दोनों छोटे बेटे और उनकी बहुएं भी मौजूद थीं और अम्मा की वापसी को बड़े मौके की तरह मनाया जा रहा था, हालांकि धूम-धाम परिवार तक ही सीमित थी। बहुओं ने बारी-बारी अम्मा के पैर छुए, बेटों ने असीस मांगी और बच्चे दादी के गले से लिपट गए।

बुढ़िया की समझ में नहीं आ रहा था कि तीन साल नरक की जिंदगी भोगने के बाद अचानक यह फेर बदल कैसे हुआ। उसे क्या पता था कि वह आज अचानक दस हजार रुपयों की रकम की मालकिन बन गई है।

आज सुबह रघु खेत पर जाने के लिए घर से निकला ही था कि आंगन में चमड़े का बैग लिए एक जंटरमैन बाबू को देख कर ठिठक गया। वह यह सोच कर डर गया कि तहसील कचहरी से कोई परवाना आया है।

"बिसाखी राम घर पर हैं ?" उस बाबू ने पूछा।

रघु उसके सवाल का जवाब नहीं दे पाया। वह उसकी तरफ देखता भर रहा। इतने में रघु की पत्नी भी घर से बाहर निकल आई। चमड़े के थैले वाले बाबू को देख कर वह भी चुप हो गई।

"भई, मैं बीमा कंपनी का एजेंट हूं," उसने सफाई दी, "इधर से गुजर रहा था सोचा बिसाखीराम से मिलता चलूं। कहां हैं वे ?"

कुछ देर चुप रहने के बाद रघु बोला, "उनका तो सुरगवास हो गया। चार साल हो गए।"

"अरे !" कह कर बाबू भी चुप हो गया। फिर वह आंगन में बिछी खाट पर बैठ गया। रघु भी उनके पास ही जमीन पर बोरी का टुकड़ा बिछा कर बैठ गया। बाबू ने बताया कि चार साल पहले बिसाखी उसे शहर में मिला था तो उससे दस हजार का बीमा उसने कराया था। अब यह दस हजार की रकम उनकी पत्नी को मिलेगी। कहां हैं वे ?

"यहीं है। किसी काम से बाहर गई हैं।" रघु साफ झूठ बोल गया।

"ठीक है। कल परसों आऊंगा। पालिसी ढूंढ़ रखना। उन्हें साथ लेकर तुममें से किसी को मेरे साथ कंपनी के दफ्तर चलना पड़ेगा। उन्हें दस हजार की रकम मिल जाएगी।"

चूंकि सारी बातें आंगन में हो रही थीं इसलिए रघु के दोनों छोटे भाइयों और उनकी पत्नियों को भी इसकी खबर मिल गई। सबने मिलकर सलाह मशविरा किया और फिर तीन साल से झोंपड़ी में पड़ी मां को वे वापस ले आए।

सत्तर साल की बुढ़िया के अस्थि पंजर को थिगलियों से भरे सलवार कुर्ते ने ढक रखा था। उसके सिर के रूखे सफेद बाल बिखरे हुए थे। पैरों में बिवाइयां फटी हुई थीं। बड़ी बहू ने तेल गरम करके सास की बिवाइयों पर लगाया। मंझली बहू हाथों पर तेल मलने लगी। छोटी बहू को कुछ नहीं सूझा तो सिर दबाने लगी।

बुढ़िया गद्‌गद हो गई। बहुओं को असीस देकर बोली, "तुम सबको एक साथ देख कर मेरा तो जीना सफल हो गया। अब मैं मर भी जाऊं तो गम नहीं होगा।"

बड़ी बहू बोली, "अम्मा, यह असुभ बातें क्यों करती हो। मरें हमारे दुश्मन। मैं तो कहती हूं मेरे बड़े भाग जो मैं सास की गोद में सिर रख कर दम तोड़ूं।"

"छि: छि: बहू, ऐसी बातें नहीं करते।" अम्मा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "तुम्हारे ऊपर तो सारी जिम्मे-

दारियां हैं। लड़के-लड़कियों के ब्याह करने हैं और छोटियों को भी तुम्हारा ही सहारा है। खरी-खोटी में तुम्हीं उन्हें रास्ता दिखाओगी। मेरा क्या है। में तो पीला पात हूं। आज नहीं तो कल झर जाएगा।"

बड़ी बहू ने उस दिन अम्मा के लिए खीर बनाई थी। मझली बहू ने अगले दिन नाश्ते में हलुआ और दोपहर के खाने में अम्मा की मनपसन्द चीज कढ़ी-चावल बनाने का फैसला किया था। छोटी बहू ने अगले दिन शाम के खाने का प्रबन्ध किया था।

तीनों भाइयों के घर साथ-साथ थे। इतने नजदीक कि एक घर की फुसफुसाहट दूसरे घर में सुनाई देती थी लेकिन तीनों में बोलचाल नहीं थी।

चार साल पहले जब बिसाखी मरा था तो क्रिया के दिन ही माल-मत्ते के तीन हिस्से करके लड़के अलग हो गए थे। वैसे बाप के जीते ही उन्होंने घर के अलग-अलग हिस्सों में अपनी-अपनी पत्नियों के दहेज में आए सामान को सहेज लिया था और अपनी कमाई अपने पास रखने लगे थे। लेकिन बूढ़े के मरने से पहले बटवारा नहीं हो सकता था इसलिए चौका-चूल्हा एक ही था और बहुएं बारी-बारी से रसोई का काम करती थीं।

बटवारे में बाप के घर के दो हिस्से दो बेटों को मिल गए थे। तीसरे भाई के लिए दो नये कमरे डलवाने का खर्च मुश्तरिके में से अलग किया गया था। घास-फूस रखने के लिए खेत में बनी झोंपड़ी अम्मा के हिस्से आई थी। तब बेटों ने कहा था यह तो बस कागजी कार्रवाई के लिए है। अम्मां को कहीं जाने की जरूरत नहीं होगी। वह तीनों भाइयों में से किसी के भी साथ रह सकती है। उसकी देख भाल की जिम्मेदारी तीनों भाइयों पर होगी।

लेकिन तीन जगह जिम्मेदारी बटने का मतलब था जिम्मेदारी किसी पर भी नहीं। रघु खेती-बाड़ी का काम देखता था। पति-पत्नी दोनों खेत पर चले जाते थे और अम्मां के लिए घर पर रसोई और भांडे-बरतन का काम छोड़ जाते थे। जब तक बुढ़िया के शरीर में दम रहा, बड़े लड़के और बहू को वह बोझ नहीं लगी। लेकिन जब उसका शरीर काम के लायक नहीं रहा तो लड़का और बहू दोनों उसे बात-बात पर झिड़कने लगे। उसके जोड़ों में तेज दर्द उठता तो वह कई-कई दिनों तक बिस्तर पर पड़ी रहती। बहू को खेत के काम के अलावा घर का काम भी करना पड़ता तो वह झल्ला कर बरतन फोड़ती और अपनी देवरानियों को सुना कर कहती कि हमारी किस्मत में तो सबका बोझ ढोना ही लिखा है। मंझला लड़का रमेश घर से तीन मील दूर कस्बे में चाय और बीड़ी सिगरेट की दुकान करता था। अपने खेत उसने जुताई पर दे रखे थे। मझली बहू के पास घर का चौका-चूल्हा करने और साग-सब्जियों की क्यारियों की देख-भाल करने के सिवा कोई काम नहीं था। छोटा लड़का रामचरण बिजली मिस्त्री हो गया था और छोटी बहू के ठाठ हो गए थे। बच्चे स्कूल चले जाते और पति नोकरी पर तो वह दिन भर रेडियो जोर-जोर से चला कर फिल्मी गाने सुनती या पड़ोस की औरतों के बीच बैठ कर फिल्मी सितारों के किस्से सुनाती।

जाड़ों में बुढ़िया बेबस हो गई। बर्फ जैसे ठंडे बिस्तर पर पड़े रहना भी मुश्किल हो जाता। बड़ी बहू से कहने की हिम्मत नहीं होती कि तसले से दो उपले जला कर दे जाए। आँगन में धूप होती तो किसी तरह घिसट कर वहां पहुंच जाती, नहीं तो बिस्तर पर पड़े-पड़े ठिठुरती रहती। एक दो बार चूल्हे के पास पहुंच कर शरीर को गरमाने की कोशिश की लेकिन बहू बरस पड़ी, "कोई चूल्हे पर टूटा पड़ा रहेगा तो मैं कैसे क्या करूं। हाथ-पैर नहीं चलते तो कोई बिस्तर पर तो पड़ा रहे।"

एक दिन बुढ़िया हिम्मत करके खेत की कोठरी तक चली गई। कोठरी के दरवाजे के पास हल्की-हल्की धूप बिछी थी। जब तक धूप रही वह वहां पड़ी रही। फिर घर जाने को तैयार हुई लेकिन हिम्मत जवाब दे गई। कोठरी के अदर ढेर सारा पुआल बिछा कर वह थोड़ी देर लेटी रही लेकिन उसे लगा कि इस तरह रात नहीं कटेगी। कोठरी में छोटा सा चूल्हा बना था कभी जब खेत में जोर का काम पड़ता था तो चाय वगैरह वहीं बनती थी। लेकिन इस वक्त चूल्हा ठंडा था। चूल्हे में हाथ डालकर बुढ़िया ने देखा कहीं गरमाइश नहीं थी। तुहों का ढेर जरूर वहां पड़ा था लेकिन जलाने के लिए आग कहां से आती?

वह सोच ही रही थी कि बाहर हल कंधे पर उठाए धीरू हलवाहा आता दिखाई दिया। एक हाथ से वह हल पकड़े हुए था, एक से हुकड़ू। बुढ़िया ने देखा उसके मुंह से धुआं निकल रहा था। उसने धीरू को आवाज दी और उसे चिलम से एक अंगार देने को कहा। सूखे भूसे में अंगार रख कर बुढ़िया ने आग सुलगाई और तुहों से चूल्हा भर दिया। फूंक मारते-मारते बुरा हाल हो गया। कोठरी में धुंआं भर गया लेकिन बुढ़िया को तसल्ली हुई कि रात आराम से कट जाएगी।

बड़ा लड़का रघु कहीं रिश्तेदारी में गया था। बड़ी रात गए लौटा तो पत्नी ने बताया कि अम्मा कहीं चली गई हैं। रघु हाथ में लालटैन लिए गांव भर में उसे ढूंढ़ता फिरा। अंत में कोठरी में आया तो देखा कि अम्मा चूल्हे के पास सो रही है। रघु ने उसे जगाया और घर चलने के लिए कहा लेकिन वह बोली, "बेटा अब तो मुझे यहीं पड़ा रहने दे। मरजी हो तो आटा चावल डाल जाया करना। मेरी तो अब नरक की जिंदगी है। दूसरों पर बोझ बन कर जीऊंगी तो पाप की गठरी ही भारी होगी।"

रघु जानता था कि मां ने अलग रहने का फैसला किसी मजबूरी में किया है। अपनी पत्नी की रोज-रोज की चकचक से वह तंग आ चुका था। हर रोज मां को लेकर कोई न कोई राग छेड़ देती थी। रघु घर में बड़ा था। गांव वालों की बोलि-

तानों से डरता था। अपने भाइयों के मन की बात भी वह जानता था। दूर से तो वे मां की कुछ सेवा कर सकते थे लेकिन मां को साथ रखने को वे तैयार नहीं थे। सोचा बुढ़िया अलग रहेगी तो तीनों भाइयों पर खर्चा बट जाएगा। ऐसे तो उसे अकेले ही सब करना पड़ता था। उसने ज्यादा जोर नहीं डाला। घर आकर दोनों भाइयों और उनकी बहुओं को बुलाया और सारी समस्या उनके सामने रखी। बुढ़िया का खर्च बराबर-बराबर आपस में बांट लेने में कोई दिक्कत नहीं आई। शायद उन्होंने सोचा अभी इसी समय फैसला नहीं लिया तो सुबह गांव वाले कुछ और ही फैसला करें। हो सकता है वे कहें बुढ़िया को बारी-बारी तीनों अपने साथ रखें या कुछ और फैसला करें।

और फिर तीनों भाइयों ने बुढ़िया की जरूरत का कुछ सामान रातों-रात कोठरी में पहुंचा दिया। रघु ने मां को आश्वासन दिया कि वह अलग भले ही रहेगी लेकिन उसे किसी तरह की तकलीफ वे नहीं होने देंगे · छोटे भाइयों ने भी उसकी हां में हां भरी और जोश में यहां तक कह दिया कि तीन-तीन बेटों के रहते उसे कोई तकलीफ हुई तो हम सब पर लानत।

उसके बाद बुढ़िया ने तीन साल कोठरी में बिताए। ये तीन साल तीन युग के नरकवास के समान थे।

दस पन्द्रह दिन तक रघु बिना नागा शाम को एक बार मां को देखने जाता रहा और उसकी सुध-सम्हाल लेता रहा। कभी घर से दाल-भाजी भी कटोरे में दे आता फिर हफ्ते में दो बार और फिर एक बार जाने लगा। दूसरे लड़के कभी-कभार चक्कर लगा आते थे। अपनी-अपनी मजबूरियों की शिकायत मां से कर आते थे कि कितनी भाग-दौड़ में जिंदगी बीत रही है और एक मिनट के लिए फुर्सत नहीं मिलती। तीनों भाइयों ने मिल कर कुछ आटा दाल कोठरी में पहुंचा दिया था और वे समझते थे कि उनका फर्ज पूरा हो गया था। तीन महीने बीतते-बीतते बुढ़िया बिल्कुल अकेली हो गई। अकेली ही सही एक घड़ा पानी तो चाहिए ही था, चूल्हे के लिए सूखी लकड़ी कहीं से लानी होती थी। दुकान तक जाने की भी कभी जरूरत पड़ती थी। इधर गठिये के कारण बुढ़िया के लिए कोठरी की झाड़-बुहार करना भी भारी हो जाता था। जब तक कोठरी के आंगन में धूप नहीं निकलती, बुढ़िया चूल्हे के पास बैठी अपने से ही बतियाती रहती। फिर आंगन में चटाई डाल कर लेटी रहती और अपने जोड़ों को धूप से सेंकती रहती। रात को मूंग की खिचड़ी या दाल-भात बनाती। आधा खाकर आधा दूसरे दिन के लिए बचा रखती। कभी बिना खाए-पकाए ही पड़ी रहती। सर्दियों के दिन उसके बेहद कष्ट में गुजरते। जोड़ों का दर्द उसे अपाहिज बना डालता। जब से धान कटने की मशीनें लगी थीं और लोगों ने अपने घरों में धान कूटना बन्द कर दिया था, धान के तुह भी बिकने लगे थे और एक डलिया चार-पांच रुपये में बिकती थी। चूल्हा गरमाए रखने के लिए एक-दो बार तो बुढ़िया पड़ोस से तुह मांग लाई लेकिन फिर उसे झिल कांटों और उपलों पर गुजारा करना पड़ा। घुटनों को धूप में गरमाने के बाद वह डंगरों के चरान से गोबर बीनती और उसके उपले थाप कर जमा करती। धीरू हलवाहा कभी कभी बांस की सूखी नाल काट कर पच्चरों का भरोठा उसकी कोठरी में डाल जाता। वही जरूरत पड़ने पर दुकान से दाल-नमक भी ला देता। बदले में बुढ़िया धीरू के खलिहान में झाड़-बुहार और दोनों की छांट-फटाक कर देती। सूप से अनाज को फटकते हुए उसकी गर्दन दोनों घुटनों के बीच जा धंसती और दूर से देखने पर सिर्फ दो घुटने ही दिखाई देते और घुटनों के बीच ऊपर उठती, नीचे गिरती सूप। गर्मियों के दिन कुछ आराम से कटते क्योंकि जोड़ों का दर्द कुछ धीमा पड़ जाता। तब बुढ़िया मंदिर तक हो आती और वहां कथा-वथा चल रही होती तो उसके दो तीन घंटे आराम से कट जाते। प्रसाद ठीक-ठाक मिल जाता तो खाने से भी छुट्टी मिल जाती। गांव के किसी भी घर में कथा पूजा होती तो बुढ़िया पूरे श्रद्धा भाव से वहां हाजिर होती हालांकि लोग दबी जबान में कहते बुढ़िया प्रसाद के लालच से आती है। बुढ़िया लोगों के दिल की बात को भी समझती थी लेकिन चुपचाप सब सुनती थी और पी जाती थी।

इज्जो गांव में उसकी एक मात्र सहेली थी। एक ही महीने में दोनों का विवाह हुआ था और दोनों कंगन बहनें बनी थीं। उम्र में भी लगभग बराबर ही थीं। इसलिए इज्जो का जब दो-तीन दिन की बीमारी के बाद स्वर्गवास हो गया तो उसे लगा अब वह भी नहीं जियेगी। इज्जो के बेटों ने गरूड़ पुराण की कथा कराई। बुढ़िया वहां भी बिना नागा जाने लगी। दो घंटे कथा सुनने के बाद सिर्फ चाय का एक गिलास मिलता था। बुढ़िया चुपचाप कथा सुनती और चाय पीकर अपनी झोपड़ी में लौट आती। फिर दिन भर बिना कुछ खाए पड़ी रहती। एक दिन कथा के बाद चाय पीते-पीते उससे चुप नहीं रहा गया। पंडित से पूछ बैठी—"पणत जी, वैतरणी क्या सभी को पार करनी पड़ती है?"

आस-पास बैठे लोग अचानक यह सवाल सुनकर हंस पड़े। हंसी-मजाक के किसी मौके को न छोड़ने वाले भगत पंडित ने कहा—"अरी चाची तुम्हें वैतरणी से क्या लेना है। तुम अभी सौ साल जियोगी तब तक वैतरणी सूख जायेगी।" "न बच्चा, मैं सौ साल नहीं जीना चाहती। इज्जो गई तो मैं भी जाऊंगी। आज नहीं तो कल। बस एक ही साध है मन में कि मरते वक्त गौदान जरूर करूं। बिना गौदान के न मरूं नहीं तो वैतरणी कौन पार कराएगा?"

भगत पणत ने ठहाका मारते हुए कहा, "चाची पांच सौ रुपये तू अभी से मेरे पास जमा करा दे। गोदान कराना मेरी जिम्मेदारी रही। लेकिन यह पांच सौ का सौदा इसी साल के लिए है। इस साल नहीं मरी तो अगले साल रकम एक हजार

और उसके बाद हर साल पांच सौ रुपये बढ़ते जाएंगे।"

बुढ़िया चुपचाप उठकर चल दी। पांच सौ रुपये उसे जिंदगी में कभी देखने को नसीब नहीं हुए थे।

आज तीन साल बाद जब उसके बेटे उसे झोपड़ी से घर ले आए तो उसके मन में आशा जगी कि अब मरने से पहले गोदान हो जाएगा और वैतरणी पार करना मुश्किल नहीं होगा। इसलिए जब खाना खाने के बाद तीनों बेटे और बहुएं उसे घेर कर बैठी तो बुढ़िया ने अपनी इच्छा बता ही दी।

तीनों बेटे ठठा लगाकर हंस पड़े बहुओं ने भी सिर के पल्लू का का कोना मुंह में ठूंस कर अपनी हंसी पर जैसे-तैसे काबू पाया।

मंझला लड़का रमेश मां के पैर दबाता हुआ बोला, 'हम तो सोच बैठे हैं तुम्हारे हाथ से इसी पूनम को सत्तनारायण की कथा कराएं और तुम गोदान की बात सोचने लगी।"

छोटे रामचरण ने कहा, "तुम्हारे तीन-तीन बेटे हैं। तुम्हें गोदान भी नहीं मिलेगा तो हमारी लोक-परलोक में क्या गति होगी। देख मां, तुम्हारा अशीर्वाद रहा तो अगले साल मेरी तरक्की हो जाएगी। फिर देखना मैं तुम्हारे लिए क्या-क्या करता हूं। मैंने सोच लिया है कि जैसे ही मुझे तरक्की मिलेगी तुम्हारी तरफ से मंदिर में ऐसा यज्ञ कराऊंगा कि गांव वाले देखते रहें।"

"सो तो ठीक है बेटा····"बुढ़िया छोटे बेटे के सिर पर हाथ रखकर बोली, "मेरा आशीर्वाद तो हमेशा ही मिलता रहेगा। अपनी आंखों से तुम्हें फलता-फूलता देखूं, यह साध तो मन में होगी ही। लेकिन मैं तो अपनी बात कह रही थी। पणत जी ने कथा सुनाई थी गरुड़ पुराण की। लहू-पीक की नदी होती है वैतरणी। नरक की नदी है। सबको पार करनी पड़ती है, और गौ की पूंछ न मिले तो नदी पार नहीं होती। इसीलिए सोचती थी ··।"

बड़ी बहू ने उसकी बात काट कर कहा, "मांजी, अब यह नरक वरक की बातें मत करो। इतने दिनों बाद तो आप घर आई हैं। नरक में जाएं हमारे दुश्मन। आपने तो पुन्न ही पुन्न किए हैं। आप नरक क्यों जाएंगी।"

"नहीं बहू। मनुष्य जोनि में आए तो पाप भी हो जाते हैं। बिना जाने ही सही और फिर पापों का दंड भी भुगतना पड़ता है।"

मंझले लड़के रमेश को लगा कि यह पाप-पुन्न और स्वर्ग-नरक की बहस लम्बी होती जा रही है। उसके भीतर कुलबुला रहे सवाल बाहर निकलने के लिए बेताब हो रहे थे। उसे लग रहा था कि बड़ा भाई दस हजार की रकम से बड़ा हिस्सा मार लेगा इसलिए वह बराबर का बटवारा करने के लिए उतावला हो रहा था। वह बोला, "देख मां, दस हजार में से एक हजार गोदान के लिए अलग रख लेना बाकी का बराबर-बराबर हिस्सा तीनों में बटना चाहिए।"

बुढ़िया ने रमेश की तरफ देखा जैसे वह उसकी बात ठीक से समझ नहीं पा रही हो। रघु ने रमेश की तरफ घूर कर देखा और रमेश की पत्नी ने धीरे से उसकी कोहनी दबाकर संकेत किया कि जरा धीरज से काम लो।

रघु को सारी बात बतानी पड़ी। बतानी तो उसे भी थी ही लेकिन वह ठीक मौके की तलाश में था। अब जब रमेश ने कह ही दिया तो उसे खोलकर सब कहना पड़ा।

"अम्मा, सुबह बीमा कंपनी का बाबू आया था। वह कहता था कि बापू ने दस हजार का बीमा कराया था। अब उस बीमे की रकम तुम्हें मिलेगी। पूरे दस हजार की रकम। बाबू कहता था कि पालिसी ढूंढ़ रखना, वह कल परसों आएगा। पालिसी तो तुम्हारे पास होगी ?"

बुढ़िया की समझ में कुछ नहीं आया।

"मेरे पास तो कोई पालिस-वालिस नहीं है।"

"पालिस नहीं मां, पालिसी। बीमा कंपनी का कोई कागज होगा।" रघु ने समझाया।

बुढ़िया के चेहरे पर कोई बदलाव नहीं आया। झुर्रियों से भरे चेहरे पर सिवाए कष्ट की अनुभूति के कोई भाव नहीं था। उसे चुप देखकर रघु बोला—"अम्मा, तुम्हें बापू ने कोई कागज रखने के लिए दिया होगा। वह कागज बहुत जरूरी है। वह नहीं मिला तो दस हजार की रकम डूब जाएगी। तुम्हें याद है कि वह कागज कहां रखा है ?"

बुढ़िया ने बारी-बारी से तीनों बेटों की तरफ देखा, फिर बोली—"कैसा कागज ? मुझे तो किसी कागज की याद नहीं।"

सब के चेहरे बुझ गए। रामचरण बोला मां, अच्छी तरह याद करो। यह बहुत जरूरी है।"

लेकिन बुढ़िया को कुछ भी याद नहीं आ रहा था। कोठरी में दो-चार बरतनों को छोड़कर और कुछ नहीं था। घर का सारा सामान तीनों भाइयों में बंटा था। पालिसी का कागज कभी किसी ने नहीं देखा था और आज इसी कागज की सबसे ज्यादा जरूरत थी।

आखिर फैसला हुआ कि अभी सब सो जाएं। कल तीनों भाई अपने घर की एक-एक चीज ट्रंक,बक्स, पिटारी, बरतन देखेंगे।

अगले दिन तीनों भाइयों ने अपने-अपने घरों में एक-एक चीज को उलट-पलट कर देखा। बुढ़िया की कोठरी की भी तलाशी ली गई लेकिन पालिसी का कागज नहीं मिला। बुढ़िया को भी बार-बार पूछा गया लेकिन उसे कुछ याद नहीं आया। आखिर सब हार कर बैठ गए। दूसरे दिन बीमा कंपनी का बाबू आया तो उसे बता दिया गया कि पालिसी का कागज नहीं मिला। बाबू यह कह कर चला गया कि अब रकम डूबी समझो।

तीन दिन बेटे-बहुओं और पोते-पोतियों के भरे पूरे परिवार

में रहने के बाद बुढ़िया फिर अपनी कोठरी में लौट आई, अपने हिस्से के नरक को भोगने के लिए। उसकी फिर वही दिनचर्या हो गई। धूप में पड़े रहना या खलिहान में धीरू हलवा के दाने फटकते रहना। गांव में कथा-पूजा हो तो बिना बुलाए पहुंच जाना और प्रसाद लेकर दिन काट लेना। जोड़ों का दर्द ठीक रहे तो डंगरों के चरान से गोबर बीन लाना और उसके उपले थापना। जब धीरू हलवाहे के खेत में कोई काम न हो और गांव में कोई कथा-पूजा भी न हो, तो किसी के खेत से साग-सब्जी, आलू, प्याज या तैयार फसल की बालियां, भुट्टे चुरा लाना।

फिर वह कई-कई दिन अपनी कोठरी से गायब रहने लगी। लाठी टेकते हुए झुकी कमर से जैसे-तैसे अपने शरीर को ढकेलते हुए वह दूर-दूर के गांवों में पहुंच जाती। कोई कथा-पूजा या शादी-ब्याह का मौका दिखता तो डेरा डाल देती या किसी मंदिर में टिक जाती। लोग पूछते बुढ़िया कहां जाना है तो कहती वैतरणी के पार। लोग हंस कर अपने रास्ते चले जाते। वह अपने में ही बड़बड़ाती हुई जंगलों, नदी, नालों और सुनसान जगहों में भटकती रहती। इसी तरह कुछ दिन भटकने के बाद वह कोठरी पर लौट आती। कुछ दिनों बाद फिर निकल पड़ती अपनी अनजानी यात्रा पर। उसका कोठरी में आना और कोठरी से बाहर जाना, घर वालों के लिए और गांव वालों के लिए भी बेमानी हो गया। वह कब आती, कब जाती, कहां रहती, क्या करती, लोगों ने इसकी पूछताछ करना भी बंद कर दिया। अंधेरे के आने-जाने की तरह बुढ़िया का आना-जाना भी लोगों के लिए कुदरत का एक नियम बन गया। बीच-बीच में उसकी बात चलती जब कोई कहता कि अमुक जगह पर पीपल के पेड़ के नीचे सोई दिखाई दी, या अमुक जगह पर वह आलू-प्याज की चोरी करती हुई पकड़ी गई।

कई दिन बाद बीमा कंपनी का एजेंट फिर बिसाखीराम के घर आया। अब की बार उसने रघु और उसके भाइयों को खुशखबरी दी कि पालिसी के कागज मिल गए हैं। कंपनी के दफ्तर में ही कागज पड़े थे। उनका कहना था कि पालिसी रजिस्ट्री डाक से बिसाखी राम के पते पर भेजी गई थी लेकिन वह वापस हो गई थी। अब सिर्फ बुढ़िया को बीमा कंपनी के दफ्तर में ले जाना था।

बुढ़िया की तलाश फिर शुरू हुई। कोठरी का दरवाजा खुला था लेकिन बुढ़िया वहां नहीं थी। सारे गांव में पूछताछ की गई। पता चला किसी ने दो दिन से बुढ़िया को नहीं देखा। आस-पास का जगल, चरान, नदी-नाले, खंडहर सब ढूंढ़े गए। पड़ोस के कई गांवों में भी छानबीन की गई। मंदिरों की खाक छानी गई। साधुओं, महंतों के ठिकानों पर पता किया गया लेकिन बुढ़िया नहीं मिली। ●

— 79 बी पाकेट 3, मयूर विहार, दिल्ली-91

(पृष्ठ 10 का शेष)

विद्यालय अनुदान आयोग ने 15 अगस्त 1984 को किया। इसके अन्तर्गत एक घंटा अवधि का एक कार्यक्रम कालेज विद्यार्थियों के लिए दोपहर 12.45 से 1.45 तक भू-उपग्रह द्वारा प्रसारित किया जाता है। फ़िलहाल यह कार्यक्रम अंग्रेजी में होता है और अनुमान है कि प्रायः एक हज़ार कालेजों के विद्यार्थी इसका लाभ उठा रहे हैं।

देश की सातवीं पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। भारत सरकार के सभी विभाग अपनी-अपनी योजनाएं तैयार कर चुके हैं। दूरदर्शन ने भी एक बड़ी योजना का प्रारूप तैयार किया है। योजना आयोग की प्रतिक्रिया इस सम्बन्ध में क्या होगी यह तो भविष्य के गर्भ में है, किंतु एक बात निश्चित है। अब तक उपलब्धियों को यदि हम संक्षेप में परिभाषित करें तो कहा जा सकता है कि हमारे सामने टी. वी. ट्रांसमीटरों का एक जाल बिछा हुआ है। कह सकते हैं कि दृश्य ऐसा मानों एक विशाल इमारत के लिए लोहे लक्कड़ का एक ढांचा खड़ा कर दिया गया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि ईंट-पत्थर और गारे सिमेंट से भरकर उसे एक सुन्दर, आवासीय भवन में परिणत कर दिया जाय। योजना यह भी है कि प्रत्येक प्रदेश की राजधानी में एक नियमित दूरदर्शन केन्द्र की स्थापना हो जाय जहां से प्रदेश की भाषा, जन जीवन, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा अभिव्यक्ति मिले। इनके अतिरिक्त ऐसे नगरों में भी दूरदर्शन केन्द्र खुलें जो अपनी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए विख्यात माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त उन कम शक्ति वाले ट्रांसमीटरों पर भी कार्यक्रम रिकार्ड करने की सुविधाएं उपलब्ध कराई जायें जो देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि दूर-दराज के निवासियों को दूरदर्शन कार्यक्रमों में सहभागी होने का अवसर मिल सकेगा। वह केवल तमाशबीन न रहकर राष्ट्रीय जीवन में अपनी भूमिका अदा कर सकेंगे। यही था श्रीमती गांधी का सपना जिनके कुशल नेतृत्व में दूरदर्शन को फलने-फूलने का अवसर मिला। वास्तविकता तो यह है कि श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रधान मंत्रित्व काल और छठी योजना को दूरदर्शन विकास के इतिहास में स्वर्णिम युग माना जायेगा। ●

उप महानिदेशक, दूरदर्शन, नई दिल्ली

मोरिशस की कविता

प्रतिकूल स्थितियां

—इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ

स्थितियां कुछ और थीं
और मैं मस्त था
अपनी ही धुन में
रंग भरता रहा मैं
जिन्दगी को
और रंगीन बनाने में
वे आहें, वे चीखें पीड़ितों की
मेरे कानों पर असर न कर पातीं
अनसुना मैं कर देता
कि किसी खुशबूदार बाग की
महक से मिलकर सुगंधित हो जाएं
और मैं मस्त था
अपनी ही धुन में
सुनहरे सपनों के
धागों को पिरोता रहा मैं
और लुढ़कती धूल में
चली जा रही थी दिशाहीन
आसपास के कितनों की
भर्रायी अपाहिज जिन्दगी
नजरें उठाने की
उनके हाथ थामने की
ज़रा सी फुर्सत ही नहीं थी मेरे पास
मैं मस्त था
अपनी ही धुन में
अपने ही जीवन को
खुशनुमा बनाने में
उधर शिशिर की ठिठुरन
कांपते बच्चों के अर्द्धावृत्त तन
इधर बदन पर लदे
हाथ में थामे ऊनी कम्बल
मैं मस्त था
अपनी ही धुन में
ग्रीष्म की उमस पाने को
अपनी ठंडक मिटाने की चाह में। ●

मंत्री, मोरिशस हिन्दी लेखक संघ
शन्फेल्ड गली, रिव्येर जी रेम्पार्ट, मोरिशस

तुम्हारी याद में

—राकेश भ्रमर

तुम्हारी याद में
मैं सारी रात
कविताएं लिखता रहा
हर अंधेरे में मैंने
उजाले के सपने देखे
अंधेरा और गहराता गया
उजाला न जाने कहां खो गया
और तुम नहीं आई
कंटकविहीन पथ की तलाश में
यहां-वहां भटकता रहा
पथ तो नजर नहीं आया
हां, नागफनियां
मेरे पैरों में उग आईं
तुम एक बार आकर देख जाती
अपनी पीड़ा तुम्हारी आंखों में देखकर
शायद मैं रोना भूल जाता
पर तुम फिर भी नहीं आईं
कई युग बीत गए हैं
और अब तो मैं
पत्थर बन चुका हूं
अंधेरे को मैं अपने शरीर में
आत्मसात कर चुका हूं
प्यार कभी-कभी सिर उठाकर
बाहर झांक लेता है
और मैं तुम्हारे इन्तजार में
एक युग बिता देता हूं
ताजमहल की तरह मैं भी
निर्जीव बन चुका हूं
परन्तु मेरे पास प्रेमी-युगल
नहीं आते हैं
हां, कभी-कभी भूले-भटके
बंजारों का कारवां गुजर जाता है
तुम्हारी यादों की तरह। ●

सी. बी. आई./एस. पी. ई.
डिविजन, औकलैण्ड, शिलांग

ठूंठ

—सुधांशु रंजन

मैं जानता हूं
अभी यह मात्र एक ठूंठ है।
कभी इसमें पत्ते भी थे,
मीठे-मीठे फल भी हुआ करते थे,
बच्चे इसकी छांह में खड़े होकर
इसके फलों को तोड़ते थे।
पतझड़ आया,
इसे नंगा बना गया।
पतझड़ का विरोध इस दरख्त ने नहीं किया,
शायद इस उम्मीद से कि वसंत में
इसमें नये-नये पत्ते उग आयेंगे।
लेकिन कोई वसंत आया ही नहीं।
आज इसकी जड़ों को दीमक खा रहे हैं···
फिर भी यह ठूंठ
अपने नुकीले पंजों से
मांसल आकाश को भेदे हुए है,
शायद यह सोचकर
कि उससे निकलने वाली रक्त की धारा
इसकी जड़ों को सींचेगी···
आह ! आकाश का वह रक्त भी
जमकर काला हो गया है।
मुझे डर है
इस गहन अंधेरे में
कोई वन्य पशु अपनी उन्मत्त दौड़ में
इस प्रपर्ण से टकरा न जाय
और यह
जिसकी जड़ों को दीमकों ने कमजोर बना डाला है
इस टक्कर को बर्दाश्त न कर
धराशायी हो जाय ! ●

—52, भाई परमानन्द कालोनी, दिल्ली

नये समय का सूरज

—डा. सुधेश

लो बिखर गया सिन्दूर नदी तट
कौन समेटे रंग
और उसकी रंगीनी
लहर-लहर में
इन्द्रधनुष सी प्रतिबिम्बित
सिकताकण में
मृगतृष्णा सी ज्योतित
अभी खुली थी बाल सूर्य की आंख
क्षितिज में बिखर गया सिन्दूर
समेटे कौन उसे ।

धीरे धीरे
जवान होगा सूरज
श्रमिक की तरह तपेगा
दोपहरी में,
जिस को छू देगा
कुन्दन कर देगा
अन्धकार का नाम नहीं छोड़ेगा
धरती पर
जड़ता में जीवन भर देगा ।

तब क्या होगा
अन्धकार के उल्लू
कहां छिपेंगे ?
जड़ता के हामी
कहां छिपेंगे
किन सिद्धान्तों के कुंजों में ?
नये समय का सूरज
नहीं दिखेगा
दिन के अन्धों को । ●

—प्लैट नं. 1317 पूर्वांचल, जवाहरलाल
नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पीली राजनीति

—पद्माशा

पीपल की तरह
एक-एक पत्ते गिराते
पीली राजनीति का मैं भी
एक हिस्सा हूं
एक शाख मैं भी
एक दुआ मेरी भी
मैं भी
एक आवाज हूं ।

पीपल की तरह पत्ते गिराते
मौसम के खिलाफ
मैंने कुछ नहीं रचा ।
पीत चेहरा भय और भूख से पीड़ित

फटे पाजामे का सच झुठलाता
मुस्कराता है—
अखबार बांचता
और नारे लगाता है—
उन्हीं खबरों का एक
हरफ़ मैं भी
इस पीली राजनीति में
कत्ल करने की
साज़िश में शामिल
एक दुआ मेरी भी ।

कारों की रेंगती हुई आवाजें
गुम हैं

कोई महान यहां आने वाला है
हवा चुप ।
शाखों सहमो
विवस्त्र होना अधर्म है
हवा को पत्ते गिराने से रोको ।

हरी कोंपलें फूटने का इन्तजार
अब कौन करेगा
इसके पूर्व ही काट डाले जायेंगे
ठूंठ खड़े पत्रहीन वृक्ष
और रोये जायेंगे नकली बसन्त । ●

— एम. डी. डी. एम. कालेज
मुजफ्फरपुर-842002

दो हाथों से

—राजीव लोचन

मैं
चाहता हूं
एक ऐसी जमीन
जिस पर
पैरों को जमाकर
अपने ऊपर
गिरते आ रहे
आकाश को
थाम लूं ।

मैं
चाहता हूं
एक ऐसा आकाश
जो
मेरे ऊपर
तना रहे
और

मैं
नीचे धसकती
जमीन को
ऊपर खींच लाऊं,
अपने लिए
इन दो हाथों से । ●

—9, सिविल लाइन्स, भोपाल (म. प्र.)

लक्ष्मण रेखा

—कनिका वर्मा

मैंने इस रेखा को पार कर,
कोई गलती नहीं की
क्योंकि तुम भी जानते होते कि न तुम लक्ष्मण हो,
न मैं जानकी।
डंडी से खींची गई तुम्हारी रेखा में,
तप और ताप का समावेश नहीं है।
ज्यों-ज्यों मैं उस रेखा को लांघती हूं,
मेरा आत्मविश्वास जागृत होता जाता है।
तुम शायद नहीं जानते कि मैं रूढ़ियों के दायरे से बाहर हूं
आज लक्ष्मण की कहानी दूसरी है।
तुम्हारी-मेरी कहानी दूसरी है
आज प्रत्येक पुरुष सामान्य से प्रतिबिम्ब ढूंढ़ता है—
'लक्ष्मण का'।
और हर नारी रेखा के पार राह खोजती है—
"अपनी"।
तुम रेखाओं की गहराई में मुझे मत नापो,
क्योंकि उस छुपे हुए सत्य को तुम भी जानते हो—
उसको पार कर मेरा अहित न होगा। ●

—सेक्टर-5/287, आर. के. पुरम्, नयी दिल्ली-110022

गर्वित मानव

—रजनी पुरी

ऐ सागर
बहुत मान था ना तुम्हें
अपने पर
कि बहुत गहरे हो तुम।
मगर मैंने देखे हैं
मानव
तुमसे भी अधिक गहरे
ऊपर से एकदम शान्त
मगर छिपाए दिल में हलचल
अन्दर से गंभीर
ऊपर से मुस्कराते
अन्दर से मौन
ऊपर से मुखर
जीते हैं इस संसार में,
जूझते हैं
जीते हैं
संघर्षरत
आज के बदलते परिवेश में।
वे महान हैं तुम से भी अधिक
इसलिए
ऐ सागर !
आज से गर्व करना छोड़ दो। ●

—C 2 बी/64 बी, जनकपुरी,
नई दिल्ली

यात्रा पर कब कोई

—रचना परमार

तुम्हीं कहो
यात्रा पर कब कोई
अकेला निकलता है
सूरज सहज ही
हो लेता है सबके साथ
रास्ते भर शुभकामनाएं
बुनती रहती हैं सांसें
धूप बन जाती है चंदन
कोहरा कलश हो जाता है
और सामने पहाड़ देखकर
ऊंचा हो जाता है माथ
अब तुम्हीं कहो
यात्रा पर कब कोई
अकेला निकलता है

हवा बजाती है शंख
झुक झुक जाते हैं
नारियल के ऊंचे पेड़
अभिवादन के लिए
आतुर हो उठते हैं
बार बार लहरों के
सतरंगी हाथ
अब तुम्हीं कहो
यात्रा पर कोई भी
कब भला
अकेला निकलता है ●

—पीटर कालोनी, टिकरापारा धमतरी
(म. प्र.)

दो क्षणिकाएं

डर

—प्रताप सहगल

आकाश में उठती है
कौंध
मैं डर जाता हूं
और बिस्तर में पड़े-पड़े
मर जाता हूं।

अमरबेल
राह चलते
कहीं भी
लिपट जाती है
मन-वृक्ष से। ●

—एफ-100, राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली-110027

अभिनय की मोहिनी शक्ति से साक्षात्कार

★ डा. सत्येन्द्र कुमार तनेजा

यह तो निर्विवाद रूप से मानना पड़ेगा कि पारसी थिएटर देश का सर्वाधिक सफल और लोकप्रिय थियेटर था। 60-70 वर्ष की अवधि में उसने भारतीय रंगमंच को अपनी प्रदर्शन-पद्धति तथा अभिनय शैली प्रदान कर एक ऐतिहासिक महत्ता का कार्य किया। यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि पारसी थिएटर प्रमुख प्रादेशिक भाषाओं—गुजराती, मराठी, बंगला, कन्नड़, हिन्दी आदि में समानांतर रूप से विकसित एवं समृद्ध हुआ। स्थानीय रंगशैलियों और रंगयुक्तियों का नाटकीय लाभ उठाते हुए वह अपने स्वरूप और चरित्र में समान था और भारतीय था। मनोहारी और रंजक तत्वों की ताम-झाम के बावजूद उसकी सफलता का श्रेय उन अभिनेताओं को जाता है जिन्होंने अपनी आवाज़ के जादू से दर्शकों को इतने वर्ष मंत्रमुग्ध किया। वाणी में उच्चारण की स्पष्टता, विशिष्टता तथा ओजस्विता के कारण ये अभिनेता अपनी आवाज़ की मोहिनी शक्ति पैदा करने में सफल रहे। कथ्य में अतिनाटकीयता होने के कारण इनकी अभिनय शैली में आवेग और आवेश का ऐसा उफान-सा रहता था कि दर्शक अक्सर उसमें खो जाते थे। इनकी रंगचर्या बहुत सीमित रहती थी, प्रभविष्णु शक्ति थी अभिनेता की वाग्मिता एवं वाग्विदग्धता। राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में इस शैली को देखा जाए तो वह भावोत्तेजना का युग था, जिसकी अभिव्यक्ति तत्कालीन नेताओं के ओजस्वी भाषणों में देखी जा सकती है। इन अभिनेताओं ने भी वाक्-पटुता का आश्रय लिया। उर्दू-फारसी के शब्दों के कारण कई पारसी नाटकों की भाषा बोझिल होती थी परन्तु अपनी वाचन-शक्ति और जीवंत अभिनय के द्वारा दर्शकों के रसास्वादन में कोई अंतर नहीं आता था। दर्शकों की दृष्टि से इस थिएटर को असाधारण व्यावसायिक सफलता मिलती रही। आज के यथार्थवादी युग में पारसी-शैली अस्वाभाविक और बनावटी लगेगी, यह भी सही है कि उनका अभिनय अतिअभिनय होता था परन्तु अपनी निपुणता और विलक्षणता के कारण वे नाटकीय अनुभव संप्रेषित करने में सफल रहे। उनकी इस शैली का असर भारतीय फिल्मों में दिखाई देता है। पृथ्वी थिएटर्स भी मूलतः पारसी थिएटर का परिसंस्कार है। वस्तुतः पारसी थिएटर अभिनय-प्रधान रंगमंच था, उसने अपनी अभिनय-कला का विकास किया और इसके अभिनेता अपनी अनोखी वाचिका क्षमता के आधार पर ही व्यावसायिक प्रतिष्ठा अर्जित करते थे। कावसजी खटाऊ, मास्टर निसार, मास्टर फिदाहुसैन, कज्जन बाई, कन्हैयालाल पंवार, मुन्नाबाई मानिकलाल डांगी जैसे नाम अविस्मरणीय रहेंगे।

छठे दशक के हिन्दी रंगमंच में उल्लेखनीय बदलाव आया जिसकी प्रतीति महानगरों से हुई। कलकत्ता के श्यामानन्द जालान, बम्बई के सत्यदेव दुबे, पहले बंबई और बाद में दिल्ली के इब्राहिम अल्काजी तथा हबीब तनवीर ने हिंदी रंगमंच में अभिनय को प्रौढ़ता प्रदान की। अतिअभिनय होने के कारण पारसी थिएटर का पूरा मंच-व्यवहार अपेक्षाकृत स्थूल तथा मुखर होता था, इसलिए कृत्रिम हो जाता था। इन लोगों ने अतिअभिनय के स्थान पर अभिनय को स्वाभाविक एवं विश्वसनीय बनाया। श्यामानन्द एक अनुभवी एवं सिद्धहस्त अभिनेता रहे हैं। उन्होंने 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास, 'जनता का शत्रु' में डाक्टर, 'शुतुरमुर्ग' में राजा तथा 'एवम् इन्द्रजित' में लेखक की भूमिकाओं को जिस आत्मीयता और गहराई से मंचित किया, वह एक अविस्मरणीय अनुभव रहेगा। अल्काजी, एक संवेदनशील अभिनेता रहे हैं। 'वेटिंग फार गोडो' तथा 'तारतूफ' में उनकी अभिनय-क्षमता और पकड़ के प्रमाण मिल जाते हैं। सत्यदेव दुबे निरन्तर अभिनय करते रहे हैं जिसका लाभ उन्होंने संवाद-प्रस्तुति के क्षेत्र में उठाया है। हिन्दी रंगमंच की ऐतिहासिक आवश्यकताओं को पूरा करते हुए इन तीन अभिनय-प्रतिभाओं ने निर्देशन का दायित्व सम्हाला और प्रस्तुतीकरण को सुरुचिपूर्ण एवं सार्थक बनाया। इन्होंने अभिनय-कला को नई और सही दिशा दी परन्तु निर्देशक होने के नाते, धीरे-धीरे अभिनय गौण तथा निर्देशन प्रमुख तथा निर्णायक बनने लगा। अभिनय की दृष्टि से इसके परवर्ती प्रभाव हानिकारक सिद्ध हुए।

अब तक सारे प्रयास शौकिया स्तर पर थे परन्तु राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना से पूरे रंगकर्म को—सिद्धान्त तथा व्यवहार, दोनों स्तरों पर—वैज्ञानिक आधार दिया गया। हिन्दी और अहिंदी प्रदेशों से प्रतिभाएं यहां एकत्रित एवं प्रशिक्षित होने लगी और इस तरह हमारे सामने एक से बढ़कर एक अभिनेता उभर कर आने लगे। इन्होंने हिन्दी रंगमंच में अभिनय के स्वरूप एवं व्यवहार को नई दृष्टि प्रदान की। अभिनय का तात्पर्य केवल वाणी के कौशल तक नहीं रहा, उसका संबंध अपनी संपूर्णता और समग्रता में पूरे शरीर, व्यक्तित्व तथा पूरे जीवन-प्रणाली से हो गया। अपने संवाद या अपनी भूमिका को मात्र प्रभावोत्पादक बना देना अभिनय नहीं है. नाट्यालेख की विशिष्ट व्याख्या, अन्य पात्रों के साथ अंतः संबंध, परिस्थितियों के दबाव से उत्पन्न आचरण को ध्यान में रखकर अभिनेता अभिनय नहीं करता, यह पात्र का जीवन जीता है। इस दिशा का प्रवर्तन जालान-अल्काजी-दुबे जैसे मूलतः अभिनेता पर प्रतिष्ठित

निर्देशकों ने कर दिया था, रा. ना. वि. में उसका एक संपूर्ण विधान निर्धारित किया गया। इन प्रशिक्षित एवं प्रतिभासम्पन्न अभिनेताओं ने नई चुनौतियों को स्वीकारा और इस कला को सूक्ष्मता, संश्लिष्टता और विश्वसनीयता प्रदान की। शास्त्रीय शब्दावली में कहा जाए तो वाचिक, आहार्य तथा आंगिक अभिनय को उपयुक्त महत्व देते हुए उसमें कलात्मकता और सृजनात्मकता उत्पन्न कर इन्होंने सात्विक अभिनय का विकास किया। ओम शिवपुरी एक ऐसा अनोखा और अद्वितीय कलाकार रहा है जिसने अपने प्राणवान अभिनय की मोहिनी शक्ति से दिल्ली रंगजगत् को मुग्ध किया। तुग़लक तथा कंजूस के अतिरिक्त, आषाढ़ का एक दिन में विलोम तथा आधे-अधूरे में चार पुरुषों की भूमिकाओं को जिस शिद्दत, गहराई तथा मनोवेग के साथ साकार किया, वह हिंदी रंगमंच में अभिनय-प्रणाली को नये आयाम देता है। वाक्-पटुता के साथ-साथ उनके अभिनय में मानवीय ऊष्मा के सृजनात्मक समन्वय ने जीवंत नाटकीय अनुभव प्रदान किया है। हिन्दी थिएटर में उनका महत्व और ऊंचा स्थान सदा बना रहेगा। उनके बंबई चले जाने के बाद अपनी प्रतिभा और योग्यता से जिस व्यक्ति ने अग्रणी स्थान और प्रतिष्ठा अर्जित की, वे हैं मनोहर सिंह। उनके अभिनय में विविधता और नवीनता है। 'ओथैलो', 'लुकबैक इन ऐंगर', 'तुगलक', 'रसगंधर्व', 'संध्याछाया', 'आधे-अधूरे, 'छोटे सैय्यद, बड़े सैय्यद, 'महाभोज' में मनोहर सिंह सहज, विश्वसनीय तथा असरदार रहे हैं।

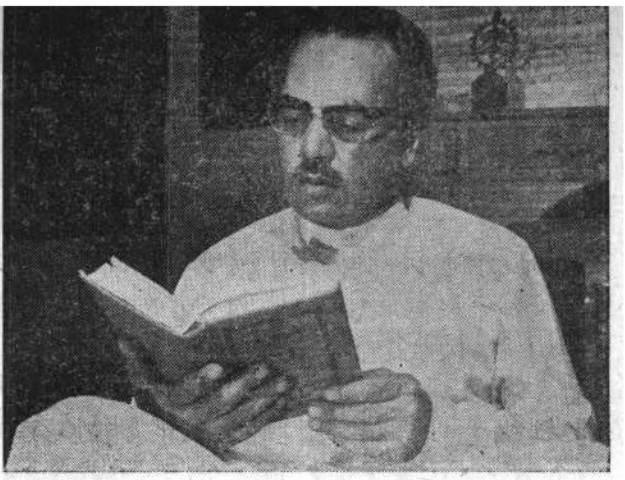
इसे रा. ना. वि. का उत्कर्ष काल ही कहना चाहिए क्योंकि सामान्य से हटकर ज़रा ऊंचे दर्जे की कई प्रतिभाएं प्रकाश में आई। संख्या और स्तर दोनों दृष्टियों से विकास एवं वृद्धि हुई। अभिनेत्रियों में सुधा शिवपुरी—आषाढ़ का एक दिन की मल्लिका, आधे-अधूरे की सावित्री; सुरेखा सीकरी—लुक बैक इन ऐंगर, आधे-अधूरे, संध्या छाया; उतरा बावकर—तुगलक, सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक; अनिला सिंह—संध्या छाया, किंग लीअर; मोना चावला—लहरों के राजहंस; मीडिया; हिमानी भट्टी—बादाम बाड़ी; तथा मीना विलियम्स, नादिरा, ऊषा बैनर्जी, हेमा सहाय, नीना गुप्ता, दीपा साही आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। पुरुषों में कई नाम उभर कर आये। दीपक केजरीवाल—अनौनीमस वैनीशियन, वसंत जोसलकर—मुख्य मंत्री, अनंग देसाई—मुख्य मंत्री, राजेश विवेक—बेगम का तकिया, आठवां सर्ग, पंकज कपूर—बाएज़ोग, शेर अफगन, रुका हुआ फैसला, के.के. रैना—बेगम का तकिया, छका हुआ फैसला, राजा बुंदेला—मुख्य मंत्री, रघुबीर यादव—सैय्या भये कोतवाल, विजय कश्यप—चोपड़ा कमाल नौकर जमाल, महाभोज, आलोक—टिपू सुलतान, अनिल कपूर—जनता का शत्रु, एकाहुण फैसला, अभिताभ श्रीवास्तव—आगमन, प्रेम मटियानी—महाभोज, युवराज शर्मा—तुगलक, महाभोज, महेश वशिष्ट—बहू, कार्तिक अवस्थी—विद्या सुन्दर, वीरेन्द्र सक्सेना—व्यतिक्रम और विधान, जो. पी. नामदेव—ओथेलो, रवि शर्मा—एक घोड़ा छः सवार तथा हेमंत मिश्र, वागीश कुमार, अखिलेश खन्ना प्रमोद माउथो, रवि झांकल, ज्ञान शिवपुरी, भारत भूषण सूरी, सुरेन्द्र शर्मा, विपिन शर्मा, सुरेश भारद्वाज आदि। कुछ कलाकारों ने मुख्यतः निर्देशन का क्षेत्र चुना परन्तु उनमें अभिनय की विशेष संभावनाएं प्रमाणित हुई हैं—ब. व. कारंत—खामोश : अदालत जारी है, बृजमोहन शाह—शह ये मात, प्रजा ही रहने दो, रामगोपाल बजाज—मैं ही हूं काल पुरुष, एम. के. रैना—आगमन, मैं ही हूं काल-पुरुष, राजेन्द्र गुप्त—सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक, रंजीत कपूर-संध्या छाया। इन्होंने अभिनय कला में ताज़गी और नवीनता लाई। इन सब ने उपर्युक्त परिपाटी में उत्कर्ष लाते हुए अभिनय-प्रक्रिया को नई ऊर्जा दी। ये लोग अपनी भूमिका को लेकर पर्याप्त अध्ययन एवं मनन करते हैं। आलेख के अतिरिक्त पात्र के व्यवसाय, वर्ग, वर्ण, और परिवेश को जानते-समझते हुए चरित्र को नई भंगिमा देने का प्रयास करते हैं। इनकी सारी कोशिश शब्द में छिपे जीवन और व्यापार को तलाशने की रहती है। इनका ध्यान उच्चारण की अपेक्षा संवाद के आरोह-अवरोह, विराम, गति-नियोजन की ओर अधिक गया है। इस संदर्भ में रंजीत कपूर द्वारा निर्देशित 'रुका हुआ फैसला' के प्रस्तुतीकरण का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि इसमें पहली बार दिल्ली के निम्न बारह प्रतिष्ठित अभिनेता एक साथ मंच पर उतरे—रा.गो. बजाज, बिनोद नागपाल, अज़ीज कुरैशी, एम. के. रैना, एस. एम. ज़हीर, शैलेन्द्र गोयल, पंकज कपूर, के. के. रैना, हेमंत मिश्र, अनिल कपूर, सुभाष उद्गाता, अभिताभ श्रीवास्तव,। अभिनय-कला की दृष्टि से यह प्रस्तुतीकरण पर्याप्त चुनौती पूर्ण रहा और दर्शक को इन अभिनेताओं की सीमाओं और संभावनाओं से साक्षात्कार करने का अच्छा अवसर देता है। इसलिए कुछ पर्यवेक्षकों के मत में सच्चाई है कि यह प्रस्तुतीकरण निर्देशक का इतना नहीं है जितना अभिनेताओं का मानक प्रदर्शन। इन रंग-प्रतिभाओं ने अपनी चारित्रिक पहचान बनाए रखने के लिए साधना और संवेदना का पूरा परिचय दिया। इनके जीवंत और सशक्त अभिनय की मोहिनी शक्ति ने दर्शक को अनोखा तथा भरपूर आस्वाद दिया। इसीलिए यह प्रस्तुतीकरण विशेष महत्ता रखता है। इनमें चरित्र-सृष्टि और प्रभाव सृष्टि उत्पन्न करने में पंकज कपूर, के. के. रैना तथा अनिल कपूर ने अपनी जितनी क्षमता का प्रमाण दिया, उतना अन्य अभिनेताओं ने नहीं।

रा. ना. वि. के बाहर ऐसी कई महत्वपूर्ण अभिनय-प्रतिभाएं मिलती हैं जिन्होंने हिन्दी रंगमंच को समृद्ध किया। अपने अनुभव और समझ से इन्होंने अभिनय को रोचक एवं सार्थक बनाया। केवल अपने नाम से अर्जित ख्याति के आधार पर इन्होंने दिल्ली के दर्शकों का आकर्षण एवं आदर पाया। रमेश मेहता—अंडर सेक्रेटरी, कुलभूषण खरबंदा—गिनीपिग, श्याम अरोड़ा—पगला घोड़ा, सुषमा सेठ-सखाराम बाईंडर, सुधा चोपड़ा—सखाराम

बाद्दर, बी. एम. वडोला—अली बाबा, बनवारी तनेजा-युद्धमन शेर अफगन, रवि वासवानी—वल्लभपुर की रूपकथा, एस. एम. जहीर—जात ही पूछो साधु की, सुभाष गुप्त—जात ही पूछो साधु की, गुलशन कुमार—उद्धवस्त धर्मशाला, इरफिदरपुरी—खामोश : अदालत जारी है, वीणा मेहता—कमला, निरुपमा वर्मा—संस्कार को नमस्कार। इस क्षेत्र में कुछ और नाम भी उल्लेखनीय हैं—विनोद नागपाल, प्राण तलवार, वेदप्रकाश, वीणा गौड, उषा सुदेश, सुचित्रा गुप्ता, सिंधु नागिया, अरुण सहगल, विनोद वर्मा, उमेश श्रीवास्तव, राकेश बक्षी, मनोज पाहवा, एस. एन. शर्मा, राजेश खट्टर, सुभाष सहगल, गिरीश बख्शी, वीणा सिद्ध, राकेश दुबे, उमेश माला। अधिकांश कलाकारों में निरंतरता और निर्वाह नहीं मिलता।

श्रीराम सेंटर ने पिछले कुछ वर्षों से अपने रंगमंडल का गठन किया है। उसमें कुछ कलाकार उभर कर आये हैं—प्रतिभा काजमी—एक सपने की मौत, सीमा भार्गव—आषाढ़ का एक दिन, मनोज शर्मा—आषाढ़ का एक दिन, ललित बहल—एक सपने की मौत, ललित मोहन तिवारी—पंछी, संजीव सहाय—जो राम रचि राखा तथा ज्ञानेश मिश्र। सुपरिचित रंगकर्मी पंचानन पाठक सेंटर में अभिनय-कला का अध्यापन तथा प्रशिक्षण करवा रहे हैं।

दिल्ली रंगमंच पर ऐसे कलाकार उभरते रहे हैं जिन्होंने अपने अभिनय की मनोहारी क्षमता से दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया। ब्रिटेन में 'भारत महोत्सव' के लिए विशेष आमंत्रण पर इब्राहिम अल्काजी द्वारा निर्देशित 'तुगलक' के नए प्रस्तुतीकरण में मनोहरसिंह ने अपनी ऐसी आकर्षण-शक्ति का आस्वाद दिया। तुगलक के जटिल चरित्र को इस बार मनोहरसिंह ने जिस संवेग तथा मनस्ताप से मंचित किया, वह उनकी पहली प्रस्तुतियों से बेहतर और असरदार तो था ही, वस्तुतः हिन्दी रंगमंच में, उसने अभिनय को नयी स्तरीयता, प्रतिष्ठा भी प्रदान की। सामान्य रूप से अभिनय प्रणाली में स्वाभाविकता का आश्रय लिया गया परन्तु तनावपूर्ण नाट्य स्थितियों में इस व्यक्ति में ज्वार भाटा सा उठती है। और वह आवेश और उत्तेजनापूर्ण स्वरों में नजीब को आदेश देता है—दिल्ली वी...रा...न...हो जा...ए...। तुगलक को जब पता लगता है कि सौतेली मां ने नजीब की हत्या की है तो मनोहर सिंह एक खास अंदाज में सिर को झटका देते हुए अपने आक्रोश एवं क्षोभ को वहशी मुद्रा में मुखरित करता है—ग़लत ग़लत! भावावेश और भावोत्तेजना का पूरा सहारा लेते हुए भी मनोहर सिंह ने अपनी शैली को पारसी शैली नहीं होने दिया। उनके अंग संचालन तथा मंच-व्यवहार में अनोखा संयम है। इससे वे तुगलक के व्यक्तित्व की अन्तर्निहित परतों को खोलने और संवेदनशीलता से प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। तुगलक के चरित्र में विविधता है, मनोहर सिंह के प्रदर्शन-व्यवहार तथा संवाद-लय में अंतर मिलेगा। प्रारंभ में तुगलक स्वप्नदर्शी है, मनोहर में कल्पना की उड़ान है, कहीं



मनोहर सिंह

चिंतन की गहराई है। षड़यंत्रों ने उत्तरोत्तर उसे क्रूर बनाया, वहां तलखी, जलन एवं पीड़ा की चुभन है। बरनी के साथ आदान-प्रदान का धरातल होने के कारण संवाद-प्रस्तुति में दूसरा लहजा है। नजीब के साथ तो सियासत का सुर है, इसलिए व्यंजन और संकेत की शैली है। सौतेली मां उसे अपने साथ बांधना चाहती है, पर वह निर्लिप्त न होते हुए भी सतर्क है। प्रार्थना करते हुए उसमें ग्लानि और निराशा की मनःस्थिति है। व्यक्तित्व की इन संश्लिष्ट परतों को साकार करने के लिए मनोहर सिंह स्वर और व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाते रहे हैं। अल्काजी ने तुगलक की त्रासद परिणति को कई दृश्यबिंबों से मर्मस्पर्शी बनाया है। अवाम के लिए पंखों के बल उड़ने वाला तुगलक अजीज़ से टकराने पर वह अंत में, ज़मीन पर ऐसा लुढ़कता है कि फिर उठ नहीं पाता। एक ज़माना था जब आदर्शों में खोये रहने के कारण उसे देर रात तक नींद नहीं आती थी, असलियत का सामना होने पर नींद इतनी हावी हो गई कि वह ज़मीन पर ही सो गया। टूटे-हारे निढाल पड़े मनोहरसिंह ने इस त्रासदी को जीवंत एवं प्रभावोत्पादक बनाया। अल्काजी ने इस नाटक को पहली बार रवींद्र भवन के मेघदूत थिएटर में तथा दूसरी बार पुराने किले में प्रस्तुत किया। दोनों बार मुक्ताकाशी मंच था जिससे वह विराट् परिदृश्य मिला जो ऐतिहासिक नाटक के लिए अपेक्षित होता है। इस बार इसे कमानी जैसे बंद हाल में प्रस्तुत किया गया जहां शब्द अधिक साकार एवं मुखर लगा। असल में जिस ऊर्जा और ऊष्मा के साथ मनोहर सिंह ने इस चरित्र को इस बार मंच पर रूपांकित किया है वह दिल्ली के दर्शक के लिए अविस्मरणीय अनुभव रहेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि तुगलक और मनोहर पर्याय हो चुके हैं। (उन्होंने चार बार यही भूमिका की, तीन बार अल्काजी के साथ और एक बार प्रसन्ना के साथ) जो समय के साथ परिपक्व एवं प्रौढ़ हो रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में संगीत नाटक अकादमी द्वारा श्रेष्ठ अभिनय के लिए मनोहर सिंह को सम्मानित पुरस्कृत करना कितना सही और सार्थक लगता है।

दिल्ली के एक और महत्वपूर्ण अभिनेता हैं पंकज कपूर

उन्होंने इस कला को नया आयाम दिया। लुधियाना के प्रि-इंजीनियरिंग के छात्र में प्रारंभ से ही वक्ता और अभिनेता के गुण विद्यमान थे। थिएटर के प्रति उनकी निष्ठा तथा प्रतिबद्धता असाधारण ही नहीं, अनोखी है। रा. ना. वि. और अल्काजी से उन्हें एक ऐसी रंगदृष्टि मिली जिसने उनकी सारी जीवन प्रणाली को बदल दिया। उनके लिए थिएटर मात्र रंगकर्म नहीं है, वह संपूर्ण जीवन-कर्म तथा जीवन-पद्धति का अंश है। उनका विश्वास है कि जिस व्यक्ति में इंसानियत नहीं है, वह इन्सान का अच्छा अभिनय कैसे कर सकता है ? जो लोग मन से बीमार हैं, वे स्वस्थ अभिनय कैसे कर सकते हैं ? असल में पंकज संवेदना तथा साधना के प्रतीक हैं।

पंकज दूसरी तरह के कलाकार हैं। वे पात्र के व्यक्तित्व के साथ मानसिक तौर पर बहुत गहराई से जुड़ते हैं। वे चरित्र को इतनी तन्मयता से आत्मसात करते हैं कि विलय का बोध होने लगता है। 'शेर अफ़गन' में पागल दिखाई देते हुए भी पागल न होने की जटिल भूमिका को उन्होंने आवेगात्मक प्रवाह के साथ दिखाया। इसके लिए वे समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन आदि की पृष्ठभूमि में रचना और भूमिका का विश्लेषण करते हैं. आलेख से जुड़े व्यक्ति, उसके आचरण, स्वभाव, व्यवसाय, जीवन पद्धति के परिप्रेक्ष्य में चरित्र का साक्षात्कार करते हैं। ऐसी मनःस्थिति में पात्र को जीना बहुत असंभव नहीं लगता। वाएज़ैग में एक पीड़ित एवं शोषित व्यक्ति की वेदना, ग्लानि और त्रासदी को मार्मिक ढंग से रूपायित किया गया है। पहली पहचान में ही उन्होंने अपनी असाधारण क्षमता और संभावना के ऐसे प्रमाण दिए जो उत्तरोत्तर बेहतर और सही सिद्ध हुए हैं।

साधारण कद-काठके पंकज कपूर अभिनय की शक्ति और ऊर्जा से इतने ऊंचे उठ जाते हैं कि दर्शक उनकी सृजन-प्रतिभा पर मुग्ध हो जाता है। 'एका हुआ फैसला' में संयम है, नियंत्रण है ताकि अन्तर्विरोधों और तनावों को साकार किया जा सके। पंकज आलेख के आधार पर पहले चरित्र की अवधारणा बनाते हैं, उसके जीवन, समाज तथा दर्शन को समझते हैं, फिर उसकी संवाद-प्रस्तुति, शब्दों के क्रम, विन्यास, विराम को देखते हुए उपयुक्त लय-विधान निर्धारित करते हैं। 'चोपड़ा कमाल नौकर जमाल' इसका प्रमाण है।

पंकज में निपुणता नहीं, आत्मीयता और सहजता है। अभिनय करते हुए वे बहुत स्वाभाविक एवं विश्वसनीय लगते हैं। पंकज में दोनों विशेषताएं हैं— वाक्-शक्ति पर अधिकार तथा चरित्र के अनुरूप रंग-व्यवहार ! दोनों में अन्विति है। पंकज में खुलापन व ताज़गी है। मौलिकता और प्रतिभा के कारण उन्होंने अभिनय को श्रेष्ठता प्रदान की है। वे सफल, लोकप्रिय तो हैं, उनमें महान अभिनेता की पूरी संभावनाएं हैं।

इस प्रकार हिंदी के नागर-अभिनय के तीन चरण देखे जा सकते हैं। पहले में पारसी थिएटर की विशेष शैली आती है



'छोटे सैयद और बड़े सैयद' में पंकज कपूर और अनिला सिंह

जहां अभिनेता अपनी वक्तृता और वक्तृता के बल पर दर्शक का मन मोह लेता था। उसके सीमित अंग-संचालन में उठक-पठक अधिक होती थी परन्तु उसकी अभिनय-कला का आधार था उसकी लोच भरी जानदार आवाज़। पारसी थिएटर ने महान कलाकार दिए। इस शैली का संस्कार और प्रभाव 4 थे दशक तक रंगमंच पर छाया रहा। इस थिएटर ने अभिनय को उसकी ज़मीन पर खड़ा किया अर्थात् वाचनकला को आधार बनाया। आरोपण और अलकरण पर बल देने के कारण आज वह शैली चाहे हमें पसंद न आए परन्तु भावाभिनय द्वारा इन कलाकारों ने अपनी प्रतिभा को प्रमाणित किया। दूसरे चरण का उदय छठे दशक, मुख्यतः रा. ना. वि. के प्रशिक्षण एवं प्रयोगों का परिणाम हैं। अब स्वाभाविकता और विश्वसनीयता का आग्रह बढ़ा। किसी भी भूमिका की अपनी इयत्ता और अस्मिता की रक्षा होने लगी। इसे चरित्राभिनय कहा जा सकता है। तीसरे चरण में, श्रेष्ठ कलाकार अपनी मौलिकता और सृजनात्मकता से चरित्र की पहचान के साथ-साथ, उसे नई अर्थवत्ता देने की कोशिश करने लगे। उत्कर्ष के इस दौर में कलाकार उपर्युक्त दोनों शैलियों का लाभ उठाता हुआ चरित्र को नई भंगिमा देने में सफल रहता है।

आज जीवन जटिल होता जा रहा है और स्थितियां संश्लिष्ट, अनुभव सीधे-सपाट नहीं रहे। इससे अभिनय की अपेक्षाएं बदल गई हैं। अब अभिनय शब्द तक न रहकर आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया बन गया है। इसलिए यह कला उत्तरोत्तर सूक्ष्म एवं संवेदनापूर्ण हो रही है। कौशल के स्तर पर निर्वाह करने वाले कई अच्छे कलाकार मिल जाते हैं परन्तु इस कला के मर्म तक पहुंचने वाले श्रेष्ठ कलाकार गिने-चुने ही हैं।

इस संदर्भ में हिंदी रंगमंच में उल्लेखनीय परिवर्तन आ रहा है। प्रस्तुतीकरण की सफलता और श्रेष्ठता का सारा श्रेय लेने की निर्देशक की मनोवृत्ति अब नहीं चल सकती। रंगमंच मुख्यतः अभिनेता का माध्यम है, इसलिए उसको महत्ता

(शेष पृष्ठ 29 पर)

भाखा का पहला व्याकरण

★ माणिक गोविन्द चतुर्वेदी

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भाखा अर्थात् मध्य वेश की मध्यकालीन साहित्यिक भाषा (ब्रज-भाषा) या प्राचीन हिन्दी का विशिष्ट साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व तो है ही, इसका शास्त्रीय साहित्य की दृष्टि से भी महत्व है। आशय यह है कि मध्यकाल में भारत में मुसलमानों के केन्द्रीय सत्ता के रूप में स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप संस्कृत और उसके ललित-साहित्य और शास्त्रों की शिक्षा की परंपरा को आघात लगा और वह क्षीणतर होती गयी। अरबी फारसी की शिक्षा की नवीन परंपरा का सूत्रपात हुआ। आर्य और द्रविड़ दोनों परिवारों की अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं को व्यापक स्तर पर साहित्य सृजन और अध्ययन की माध्यम के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। इसी के परिणामस्वरूप मध्यकाल में भाखा एक अखिल भारतीय साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित हुई। इतना ही नहीं, संस्कृत और अरबी, फारसी के साथ-साथ भाखा के अध्ययन अध्यापन की परंपरा ही प्रारंभ नहीं हुई, अपितु संस्कृत और अरबी फारसी के जानकार विद्वानों को भी भाखा में लिखे जा रहे साहित्य और शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव होने लगा।

इसीलिए भाखा में लिखी गई अनेक साहित्यिक और शास्त्रीय कृतियों का संस्कृत और फारसी अनुवाद हुआ, उन पर टीकाएं लिखी जाने लगीं और भाखा सीखने सिखाने के लिये द्विभाषिक कोश और व्याकरण ग्रंथ लिखे जाने लगे।

इसी प्रकार का एक प्रयास औरंगजेब के शासन काल में मिर्जाखान इब्न फखरुद्दीन मोहम्मद का फारसी ग्रंथ है तोहफतुल-हिन्दी, जिसमें भाषा के पिंगल (छन्द-शास्त्र) तुक-विचार काव्य-शास्त्र या नवरस अलंकार, दोष, शृंगार रस, नायिका भेद-नायक भेद, संगीत, काम शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र के साथ-साथ भाखा का व्याकरण तथा शब्द कोश मिलता है। तोहफतुल-हिन्द अर्थात् 'भारत का उपहार' नामक फारसी का यह ग्रंथ औरंगजेब के शासन काल में 1675 में लिखा गया था, जो भाखा व्याकरण के अंश को छोड़कर अभी तक अप्रकाशित है। संप्रति तोहफतुल-हिन्द हस्तलिखित रूप में खुदाबख्स लायब्रेरी पटना, एशियाटिक, सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता, इंडिया आफिस लंदन के पुस्तकालय जैसी संस्थाओं में सुरक्षित है। मिर्जाखान के तोहफतुल-हिंद के भाखा-व्याकरण में संबंधित अध्याय श्री एम. जियाउद्दीन द्वारा 'मिर्जाखानम् ग्रामर आफ दी ब्रजभाखानाम, से विश्वभारती-शान्ति निकेतन से 1935 में प्रकाशित हो चुके हैं।

मिर्जाखान के तोहफतुल-हिन्द में भूमिका तथा परिशिष्ट के अतिरिक्त कुल सात अध्याय हैं, जिनमें छंदशास्त्र, काव्य शास्त्र, संगीत आदि बिषयों की सविस्तार और प्रामाणिक चर्चा की गई है। भूमिका में लेखक ने भाखा की ध्वनि व्यवस्था, लेखन व्यवस्था के साथ-साथ भाखा के व्याकरण की सोदाहरण चर्चा की है, तथा अंत में तीन हजार से अधिक शब्दों का एक कोश भी दिया गया है जिसमें सभी शब्दों को मानक-वर्तनी में लिखा गया है, और उनके उच्चारण और अर्थ पर संक्षिप्त टिप्पणी दी गई है।

तोहफतुल-हिन्द के प्रारंभ में लेखक ने अपने आश्रय दाता औरंगजेब तथा उसके पुत्र आजम शाह की प्रशस्ति की है तथा फिर अरबी फारसी लिपि में भाखा के लेखन की समस्याओं पर विस्तार से विचार किया है। लेखक की दृष्टि मूलतः तुलनात्मक और शैक्षिक है। अतः उसने पहले भाखा की ऐसी ध्वनियों की चर्चा की है, जो अरबी, फारसी लिपि में सरलता से लिखी जा सकती है। इसके बाद उसने भाखा की उन 17 ध्वनियों पर विचार किया है, जिन्हें अरबी फारसी लिपि में सरलता से नहीं लिखा जा सकता। लेखक ने इन 17 ध्वनियों को अरबी फारसी लिपि में लिखने के लिए लिप्यंतरण की अपनी एक योजना प्रस्तावित की है, तथा आगे भाखा के शब्दों और वाक्यों को जहां उदाहरण के रूप में लिखा है, उन्हें अपनी लिप्यंतरण की योजना के अनुसार ही लिखा है।

प्रस्तावना के दूसरे अध्याय में मिर्जाखान ने देवनागरी वर्णमाला को उसके पारंपरिक क्रम में प्रस्तुत किया है, प्रत्येक वर्ण के उच्चारण को वैज्ञानिक रीति से स्पष्ट किया है, और अरबी फारसी वर्णों से उनका पार्थक्य दर्शाया है। इतना ही नहीं उसने सरल और संयुक्त वर्णों के लेखन की समस्या पर भी प्रकाश डाला है, और मात्राओं के लगाने तथा समान और विषम वर्णों के संयुक्त रूपों की चर्चा की है। इस प्रकार प्रस्तावना के प्रथम खंड के प्रथम चार अध्यायों में लेखक ने भाखा की ध्वनि और लेखन व्यवस्था का विवेचन अरबी फारसी की ध्वनि और लेखन व्यवस्था के व्यतिरेक में वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

प्रस्तावना के द्वितीय खंड में भाखा के व्याकरण की चर्चा करते हुए मिर्जाखान ने सबसे पहले ब्रज प्रदेश की सीमाओं का विवरण देकर उसकी भाषिक परंपरा का उल्लेख करते हुए, संस्कृत प्राकृत और भाखा का परिचय दिया है और फिर भाखा व्याकरण की रूपरेखा प्रस्तुत की है।

यहां यह उल्लेखनीय है मिर्जाखान अरबी फारसी के साथ-साथ संस्कृत के भी विद्वान थे। किन्तु उन्होंने प्रस्तुत व्याकरण को फारसी की व्याकरण परंपरा के अनुसार ही लिखा है, हां यत्र तत्र उस पर संस्कृत व्याकरण का प्रभाव भी दिखता है क्योंकि उन्होंने अपने व्याकरण में अनेक संस्कृत व्याकरण शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। शब्द और शब्द भेदों की चर्चा करते हुए मिर्जाखान कहते हैं कि 'कलिमाह' को संस्कृत में शब्द कहते हैं तथा वह तीन प्रकार का होता है—संपादन, कर्तब, और कर्ता। संपादन से लेखक का तात्पर्य 'संज्ञा' से है, जब कि कर्तब का अर्थ है क्रिया। स्पष्ट है शब्दों का इस प्रकार के वर्गीकरण का आधार न संस्कृत व्याकरण में मिलता है और न ही बाद में लिखी गई हिन्दी व्याकरणों में। इस प्रकार मिर्जाखान की ये व्याकरणिक कोटियां निश्चित ही आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों के लिए सैद्धान्तिक दृष्टि से एक समस्या है। ऐसा लगता है कि फारसी व्याकरण 'इस्म' के लिए मिर्जाखान' ने संपादन शब्द का प्रयोग किया है। आगे अपने व्याकरण में मिर्जाखान ने संपादन कर्तब और कर्ता की सविस्तार चर्चा फारसी व्याकरण के 'इस्म' (संज्ञा) (फिल, क्रिया) और हर्फ (निपात) के रूप में ही की है।

मिर्जाखान के अनुसार संपादन दो प्रकार का होता है, एक जो अपने प्रयोग के लिए किसी दूसरे शब्द पर निर्भर नहीं होता, उसे संपादन कहा है और दूसरा जो दूसरे पर निर्भर होता है और उसे बित कहा है, जो अरबी फारसी के हर्फ के समान होता है। संभवतः बित से लेखक का तात्पर्य वृत्ति से ही है, परन्तु इस अर्थ में यह शब्द संस्कृत व्याकरण शास्त्र में प्रयुक्त नहीं मिलता। इसी प्रकार कर्तब या क्रिया का विवेचन भूत, वर्तमान, भविष्य क्रिया और किर्त के रूप में किया गया है। संक्षेप में मिर्जाखान ने अपने भाखा व्याकरण के विवेचन में भाक्षी की शब्दावली का प्रयोग तो किया है परन्तु उन्हें अरबी फारसी के व्याकरण की दृष्टि से परिभाषित किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मिर्जाखान ने फारसी व्याकरण से परिचित लोगों को भाखा सिखाने के लिए फारसी व्याकरण के आदर्श पर अपने भाखा व्याकरण की परिकल्पना की है। किन्तु उनकी दृष्टि मूलतः वैज्ञानिक है अतः वे भाखा की व्याकरणिक विशेषताओं को भली भांति पकड़ सके है और उदाहरणों द्वारा अपनी मान्यता सिद्ध करने में सफल हुए हैं।

मिर्जाखान की इस भाखा व्याकरण का महत्व इसलिए विशेष है कि वह न तो प्राचीन संस्कृत व्याकरण परंपरा के आदर्शों के अनुसार लिखी गई है और न ही परवर्ती काल में पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों द्वारा ग्रीक और लेटिन की व्याकरण परंपरा के अनुरूप लिखे गये हिंदी व्याकरण ग्रंथों के समान हैं। वह अपने आप में एक विशिष्ट प्रयास हैं जिसके मूल में फारसी व्याकरण परम्परा रही है। किन्तु फारसी व्याकरण परंपरा के अनुसार लिखे गये किसी अन्य भारतीय भाषा के व्याकरण के अभाव में मिर्जाखान का यह व्याकरण अद्वितीय सिद्ध होता है। इतना ही नहीं, इस ग्रंथ में भाखा के स्वरूप और उसके साहित्यिक और शास्त्रीय विकास की जो छवि हमारे सामने आती है, वह हिन्दी के इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः आवश्यकता है कि तोहफतुल-हिन्द हिन्दी अनुवाद के साथ शीघ्र प्रकाशित हो।

प्रोफेसर और केन्द्र प्रभारी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नई दिल्ली-110016

(पृष्ठ 27 का शेष)

मिलनी चाहिए। मनोहर सिंह, राजेश विवेक, पंकज कपूर, के. के. रैना जैसे उदाहरण बढ़ते जा रहे हैं जिन्होंने केवल अपनी अभिनय-प्रतिभा के आधार पर प्रतिष्ठा अर्जित की। धीरे-धीरे हिंदी रंगमंच महानगरों से हट कर हिंदी-प्रदेश के विभिन्न नगरों से जुड़-बढ़ रहा है। अपना परिवेश मिलने से उसके स्वरूप और आस्वाद में अन्तर आ रहा है। परंपराशील रंगशैलियों, स्थानीय बोलियों और हिंदी के प्रयोग के प्रति नई सजगता आई है। इनके परिणामस्वरूप भाषा की वाचन-शक्ति और अभिनय को आवश्यक स्थान और सम्मान मिलेगा। निर्देशक की अग्रणी स्थिति के कारण कुछ रा. ना. वि. के प्रशिक्षण की सीमा के कारण भाषा के उच्चारण और वाणी पर यथेष्ट सतर्कता नहीं बरती गई। असह्य को असैह, क्षमा को शमा, जैसी अनगिनत भूलों पर ध्यान न देकर हम सचमुच भाषा की वाचन-शक्ति के साथ अनाचार कर रहे हैं। अनुभवी एवं प्रतिष्ठित अभिनेता तक अपनी इस कमी के बारे में सावधान नहीं हैं। सच तो यह है कि आज भी हिंदी रंगमंच पर सही और साफ बोलने वाले अभिनेता कम हैं। इस लिहाज़ से पारसी थिएटर और पृथ्वी थिएटर्स का हमेशा स्थान एवं महत्व बना रहेगा। चरित्र के नए पहलुओं को नए कोण से उजागर करने के लिए मुद्रा और गति के संयोजन और मंच-व्यवहार की निश्चय ही आवश्यकता है परन्तु अभिनेता का भाषा के संस्कार और व्यवहार पर पूरा अधिकार होना चाहिए। समय आ गया है निर्देशक इन सवालों को लेकर सतर्क एवं सचेष्ट हों। श्रेष्ठ अभिनय में दर्शक को प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता होती है और वह आ सकती है अभिनेता की वाक्-शक्ति और मंच-कर्म के सर्जनात्मक समन्वय से। वह अनुकरण नहीं सृजन करता है। अभिनय-कर्म को इसी गंभीरता से लेना चाहिए।

—8, हंसराज कालेज टीचर्स फ्लैट्स मलकागंज, दिल्ली-7

ऐसे थे हमारे प्रथम राष्ट्रपति



सांय-सांय करती अर्धरात्रि की निस्तब्धता ! बिहार के चम्पारण की अश्रुपूरित धरती की छाती को सहलाती दो व्यक्तियों की पगध्वनि ! एक पगडंडी से दूसरी पगडंडी पर निर्भय चलती उनकी काया ! प्रत्येक के सिर पर एक-एक भारी गठरी ! स्वयं भार वहन किये, जैसे धरती के भार को ये अपहरण करने चले हों। दृढ़, उग्र उनका मनोबल ! एक गोरा नाटा और अद्वितीय ! स्यात्, एक राम दूसरा भरत (मात्र वर्ण का अन्तर) ! कदाचित्, एक गुरु था, दूसरा शिष्य। एक गांधी था, दूसरा राजेन्द्र :

"युगल पुण्य आलोक उतर,
भारत में केन्द्रभूत हुआ,
एक बना 'राजेन्द्र', एक से
'गुरु' गांधी उद्भूत हुआ।"

जनक-याज्ञवल्क्य की राजर्षि परम्परा की, गौतम-कपिल कणाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि की, चन्द्रगुप्त-अशोक की अमित वैभव-कोटि की, महावीर-बुद्ध के करूणापूरित ज्ञानवारिधि की, बाणभट्ट-विद्यापति की साहित्यिक सुगंध की, राजगृह-नालंदा की निरभिमानी देवत्व कल्पना की; हमारे गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति, राजेन्द्र प्रसाद अन्यतम सशक्त शृंखला थे।

ब्रह्मचारी-विद्यार्थी-सा विद्याध्ययन, योगमय संन्यासी-सा आचरण, निश्छल किसान-सी भावुकता-मिश्रित सहृदयता, वानप्रस्थ-सा निष्काम जीवन, पर-न्यूनता के प्रति सहानुभूति-परक

चन्द्रशेखर शुक्ल

व्यवहार, विरोधियों का चिर-विश्वसनीय, विरोध के मरुस्थल में भी शाद्वल भूमि की संरचना करने वाले, परार्थ कल्याण-पथ पर 'स्व' की प्रतिष्ठा गंवाने वाले; अपनी अवमानना पर भी घनी मूंछों के नीचे सदा हंसने वाले; एक मात्र वही तो थे। सघन भौंहों के नीचे तप्त जनमानस को शीतलता प्रदान करने वाली उनकी आंखें सदा करुणा बोती रहतीं। किसान की ऐसी पावन प्रतिमा में, यह कैसी विलक्षण प्रतिभा थी! उनके चतुर्दिक जीवन के सोलहों कलाओं से भासमान तेज में कहीं भी मलिनता की परछाई न दिखी।

वह ऐसे नवनीत-भरे संत थे, जो पर-दुखताप से सद्यः द्रवित हो जाते थे। इसीलिए तो उन्होंने विद्यार्थी जीवन को निष्कलुष भाव से व्यतीत कर, कलकत्ता विश्व विद्यालय में अपनी योग्यता का कीर्ति-स्तम्भ स्थापित किया। पटना हाईकोर्ट की अपनी लहलहाती वकालत को लोष्ठवत् त्याग दिया। नसीब होने वाली जज की कुर्सी की ओर एक नज़र भी नहीं देखा। गुरु गांधी के अनुचर बनकर अपने अग्रज की कामनाओं को मसलकर वह विदेह की भांति जन-कल्याण में जुट गये।

गांधी ने युवकों की ओर संकेत करते हुए कहा था—"देखो, यही बिहार के राजेन्द्र प्रसाद हैं, जिनका त्याग हमारे लिए गौरव की बात है। नेतृत्व के लिए इन जैसा आचरण चाहिए। यह पटना हाईकोर्ट के जज की कुर्सी पर बैठने वाले थे। लेकिन, इन्होंने मुल्क और कौम की सेवा के लिये, उस पद की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा।"

युवकों की प्रेरणा

उनके पास मंत्रमुग्ध करने वाली रूपराशि नहीं थी। विरासत में मिली अकूत सम्पदा और जैविक प्रतिष्ठा नहीं थी। यशःकीर्ति पाने की लालसा भी नहीं थी। विद्वत्ता-प्रकाशन की वृत्ति नहीं थी। हां, एक अनमोल रत्न उनके पास जरूर था— मधुर एवं पवित्र मुस्कान से जुड़ी उनकी सरल वाणी। अपनी इस

नैसर्गिक निधि के कारण वह करुणा-संकुल बन गये, अजातशत्रु हो गये। जेल में घर के लोग उन्हें देखने गये थे। साथ में एक शिशु भी था। जब सब लोग चलने लगे तो शिशु ने कहा "तूहूं चल ना बाबा"। इस वाक्य को सुनकर उनका भाव-प्रवण हृदय वात्सल्य रस से उमड़ पड़ा। अमित, करुणा एवं बेशुमार कल्पनामयी उनकी आंखें डबडबा गयीं। फफकते हुए, उन्होंने कहा "तू चलबा, हम कबो आइबि न।"

वह सिद्धांत के ठोस धरातल पर अडिग हिमालय थे और व्यवहार के विस्तृत क्षेत्र में असमतल, बंजर भूमि सींचने वाली गंगा की पावन धारा। अपनी मातृभाषा में, जब वह धाराप्रवाह बोलते तो समां बंध जाती। उस अनाकर्षक शरीर वाले को युवक घेर लेते। उस भीड़ में वह बुदबुदाने लगता "क्या कहूं, जिन्हें खूब पढ़ने और नामवरी कमाने के लिए उत्साहित करना चाहिए, उन्हीं को आज देश की परिस्थिति से मजबूर होकर, बलिवेदी पर चढ़ने के लिए प्रेरित कर रहा हूं।"

हिंदी के पुरोधा

वह हिंदी भाषा और साहित्य के निष्ठावान् उपासक ही नहीं, अपितु उसके पुरोधा भी थे। वह कहा करते थे यदि भारत की भाषा अंग्रेजी का स्थान नहीं ले लेती तो भारत को स्वतंत्र करने की ऐसी आतुरता ही क्या है?

भारतीय नेताओं में एकमात्र राजेन्द्र प्रसाद ही हैं, जिन्होंने अपनी आत्मकथा हिंदी भाषा में लिखी, वह भी जेल में, एकनिष्ठ होकर, बिना किसी 'नोट' के। यह 'आत्मकथा', जीवन-साहित्य की सहज स्फूर्त भावनाओं से भरी पड़ी है। इसमें भारतीय राजनीति की सन् 1946 तक की घटनायें, एक निश्चल देहाती की डायरी की तरह संगृहीत है। इस ग्रन्थ की विशेषता है: इसके भाव का सहज माधुर्य और भाषा का संयत नाप-तोल।

वह सात भाषाओं के विद्वान थे—देहाती रस-गंध से सराबोर। वह अंगूर-सदृश थे, जहां फोड़ें, वहीं से रस चूने लगता। वह सिर से पैर तक हृदय ही हृदय थे, पोर-पोर में करुण-भरे हुए। उनकी जुबान में सख्ती का नामो-निशान नहीं।

गांधी की 'आत्मकथा' यदि सत्य का प्रयोग है तो राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' हृदय की निर्मलता का अनावरण। एक उदाहरण है: "रात में जब सब लोग सो जाते तो माई दाई को भेजती कि बबुआ को जगा लाओ। वह जगाकर मुझे ले जाती और उस कमरे में मुझे छोड़ देती, जहां मेरी पत्नी रहती। नींद के मारे मुझे उस वक्त जागना कठिन हो जाता। कितनी भी कोशिश होती, अक्सर मैं जागता ही नहीं। दूसरे दिन मां और चाची डांटती कि रात को जागते नहीं और बुलाने पर भी नहीं आते।"

स्वदेशी के भक्त

जिस प्रकार वह 'स्वभाषा' के प्रति निष्ठावान् थे, वैसे ही 'स्वदेशी' वातावरण के प्रति श्रद्धालु भी। सिर से पैर तक वह स्वदेशी थे, महज सिद्धान्त में नहीं, व्यवहार में भी। उन्होंने कभी विदेशी बिस्कुट हाथ से छुआ तक नहीं, किसी भी हिन्दीभाषी आत्मीय को हिंदी के अतिरिक्त, किसी भाषा में कुछ लिखा नहीं नेहरू जी का दिया हुआ, विदेशी दस्ताना भी उन्होंने पहना नहीं।

इस प्रकार, किस क्रान्तिकारी पुरुष से वह कम थे? क्रान्ति त्याग और बलिदान चाहती है। उन्होंने राष्ट्र-यज्ञ को अपने स्व-त्याग के हविष् और बलिदान के साकल्य से भर दिया। अंग्रेजों द्वारा स्थापित तत्कालीन विद्यालयों से उन्हें अंग्रेजियत की बदबू निकलती नजर आती थी: "यह ठीक है कि भारत भूमि पर और भारत के ही आकाश के नीचे इन विद्यालयों की दीवारें बनी हुई हैं। उनमें भारत नहीं है। उनमें है, योरोप और इंगलैण्ड।"

नीलकंठ भरत

कतिपय अप्रिय कार्यों का भी उन्हें निर्वाह करना पड़ता था। वह नीलकंठ थे, दूसरे को अमृत-पान कराने के लिये स्वयं गरल पान कर जाते थे। खंडित आजादी के जश्न मनाने से विरत होने के लिए गांधी दुख दर्द भरे शब्दों में यह कहते हुए दिल्ली छोड़ चुके थे: "जब भारत मां के अंग-अंग झुलस गये हों, उसके अंग-अंग कट गये हों, भाई-भाई का गला काट रहा हो, मैं जश्न मनाने के लिये दिल्ली में कैसे रहूं।" गांधी राम बनकर वन को चल दिये। किन्तु, राष्ट्र का अप्रिय, किन्तु गुरुतर भार वहन करना आवश्यक था। राजेन्द्र ने गांधी राम की जिम्मेदारी भरत की भांति वहन की। पांच एकड़ में विस्तृत अमित राशि से निर्मित, अनगिनत, कक्षों वाले वैभव-पूरित उस राजसी महल में एक चौकी पर कम्बल और चादर बिछाकर सोते थे, वैसे ही जैसे भरत विलासमयी साकेत नगरी के समीप नन्दी ग्राम में रहा करते थे:

"तेहि पुर बसत, भरत बिनुरागी
चन्चरीक जिमि चंपक बागी" —'मानस'

राजेन्द्र प्रसाद भारतीय विधान निर्मात्री परिषद् के अध्यक्ष बनाये गये। इस व्यक्ति की गंवारूपन की हद तक गढ़ी सरलता और गगन तक ऊंची विद्वत्ता को देखकर कितने मानियों का मान टूट गया। उनकी विद्या के आगे बड़े-बड़े विद्वानों के सिर झुक गये। उनकी भाषणकला की प्रांजलता के सम्मुख शरच्चन्द्रिका लज्जित हो गयी। कहा जाता है कि विवेकानन्द वाक्य नहीं, पन्ने पढ़ते थे। विवेकानन्द की साक्षात् प्रतिमूर्ति, राजेन्द्र

(शेष पृष्ठ 34 पर)

उनके पिछले पांच साल दिन-रात मज़दूरी करने में बीते थे।

वे सूरज की पहली किरण के साथ खेत पहुंचते और अंतिम किरण डूबने तक काम करते। जीवन में काम, केवल काम, थकावट से चूर-चूर कर देनेवाला काम। गोरे मालिक उनसे केवल काम करवाते। सांस लेने तक की छूट न होती। थोड़ा आराम करने ज्यों ही बैठते त्योंही कोड़े की मार से उनकी पीठ छिलने लग जाती।

अब तो वे मुक्त हो चुके हैं। जहां भी चाहे वे जाकर मज़दूरी कर सकते हैं। अब वे 'आंगाज़े' के बन्धन से मुक्त हो चुके हैं। वे सुख की सांस ले सकेंगे। उनसे जानवरों की तरह व्यवहार नहीं किया जाएगा।

जब भी कोई उनसे मिलने 'बो-शां' कोठी आता तो वे अपना परिचय इस प्रकार देते :—

जिला	—	आरा
परगना	—	ससराऊ
गांव	—	राजपुर
नं.	—	2025
नाम	—	जतन

कोठी में लोग उन्हें चाचा नाम से पुकारते थे। इसकी बजह यह थी कि वे आयु में काफ़ी बड़े थे। पचास से ऊपर के लगते थे। मज़दूरों के बीच उनकी काफ़ी इज्ज़त थी। यह इज्ज़ात और भी बढ़ गई जब चाचा ने यह निश्चय कर लिया कि वे अब भारत नहीं लौटेंगे। वे अपने असहाय, शोषित मज़दूर भाइयों के बीच रहकर उनकी सेवा करेंगे।

जतन चाचा जब राजपुर गांव से चले थे तब उनकी पोटली में हस्तलिखित रामायण की एक प्रति भी थी। पूरी रामायण तो न थी—केवल किष्किन्धा काण्ड था। वे रात-बिरात उसकी प्रतिलिपि की तैयारी में लगे रहते थे। चाचा के साथ दो युवक मज़दूर भी रहते थे रघु और लोचन। उन लोगों ने एड़ी-चोटी का पसीना एक करके कुछ पैसे इकट्ठे किए थे। उन पैसों से वे कागज़ खरीद लाए और जतन चाचा के द्वारा उठाए महान कार्य में अपना सहयोग देने लगे। वे एक बात के लिए जतन चाचा के प्रति कृतज्ञ थे जतन चाचा ने ही उन दोनों को हिन्दी का ज्ञान दिया था। इसकी शुरूआत यों हुई—

एक बार जतन चाचा, रघु और लोचन तीनों एक ही खेत में काम कर रहे थे। जतन चाचा ने सरदार से आंख बचाकर उन दोनों को अपने पास बुलाया। उन्होंने ज़मीन साफ़ करके अपनी उंगली से उस पर "राम गति देहू सुमति" लिखकर कहा—आज से तुम दोनों को हिन्दी सिखाउंगा। फिर तो हिंदी सीखने का सिलसिला चल पड़ा ज़मीन पट्टी बनी, उंगली लेखनी। पढ़ाई में उन लोगों ने बड़ा परिश्रम किया। तभी तो वे थोड़े समय में रामायण पढ़ने लग गए। रघु और लोचन को वह घटना अब भी याद है, अब जतन चाचा ने पहली बार रामायण का सत्संग शुरू किया था।

रात में करीब साढ़े आठ बजे जतन चाचा ने कोठी के कुछ जवानों को इकट्ठा कर लिया था। उन्होंने उनसे कहा—यहां आने पर इस देश में हमारे हजारों हाथों ने सारे जंगल काटकर, पत्थर हटाकर, ज़मीन को खेती योग्य बना दिया है। हमने सभी

कांटों पर चलते हुए

★ मुनीश्वर लाल

इस वर्ष मोरीशस में भारतीय आप्रवासियों की 150वीं वर्षगांठ धूमधाम से मनाई जा रही है। इन आप्रवासियों के पूर्वज भारत से तत्कालीन अंग्रेज महा-प्रभुओं द्वारा मजदूर के रूप में वहां ले लाये गए थे। उन्होंने अत्याचारों व उत्पीड़न के बीच रह कर भी अपनी भाषा, धर्म और संस्कृति की रक्षा की है मोरीशस-निवासी लेखक की यह कहानी इसी पृष्ठभूमि पर आधारित है।



तरह के कष्टों को झेलकर कड़ी मेहनत की है। यह हमारा हक़ है कि हम भी अपनी भाषा पढ़ें, त्योहार मनाएं और रामायण का सत्संग करें। सभी युवकों ने उनके विचारों का समर्थन किया। उसी रात रामायण का सत्संग शुरू किया गया। किसी ने मंजीरा सम्भाला तो किसी ने झाल और किसी ने ढोलक। जतन चाचा के स्वर में स्वर मिला कर युवक जोश में रामायण की चौपाइयां गाने लगे थे। यह बात जब सरदार को मालूम हुई तो दौड़ा-दौड़ा आया और जतन चाचा को पालगी कहकर उलाहने के स्वर में बोला—चाचा ! आप हम लोगों को मरवायेंगे क्या? यदि साहब को पता चल गया कि यहां रामायण का सत्संग शुरू हुआ है तो हमारी खैरियत नहीं।

——घबराने की कोई बात नहीं। अगर तुम हमारा साथ दोगे तो कोई हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा।—जतन चाचा ने कहा।

——सो कैसे ?

——साहेब को समझाना तुम्हारा काम है। उन्हें यही बताना होगा कि हम ईश्वर की प्रार्थना कर रहे हैं। यह प्रार्थना सभी के कल्याण के लिए है। साहेब के कल्याण के लिए भी है।

एक दिन कोठी में एक पादरी आया था। वह मज़दूरों को समझा रहा था कि सारी समस्याओं का हल धर्म-परिवर्तन है। जतन चाचा शिक्षित थे, वे धर्म-परिवर्तन का मतलब जानते थे। एक खतरे की आशंका से वे कांप उठे। वे सिर पकड़े खड़े रहे। सोचने लगे कि यदि धर्म-परिवर्तन जारी रहा तो यहां भारतीयता का नामोनिशान मिट जाएगा। जतन चाचा ने तभी से निश्चय कर लिया था कि वे लोगों में हिंदुत्व भरने का प्रयास करेंगे और रामायण, हनुमान चालीसा आदि के माध्यम से अपनी संस्कृति की ओर लोगों का ध्यान खींचेंगे।

\+ \+ \+

सूरज डूब चुका था। झोंपड़ियों में चिराग जल चुके थे। जतन चाचा की झोंपड़ी के सामने किसी ने आवाज दी।

——जतन चाचा ! ओ, जतन चाचा !

जतन चाचा बाहर आये। उन्हें रामुदु को पहचानने में देर न लगी। उसे गले से लगाया और घर के अन्दर ले आये।

ढिबरी मद्धिम रोशनी में जल रही थी। ज़मीन पर गोनी बिछा दी गई और दोनों उस पर बैठ गए। रघु कुल्ला करने के लिए लोटे में पानी ले आया। अतिथि का स्वागत शर्बत से किया गया।

जतन चाचा ने रामुदु से कहा—भाई रामुदु तुम्हारी ओर क्या हाल है ? ज़रा सुनाओ न। हमारे मज़दूर भाइयों की क्या दशा है ?

——हमारी कोठी सविनिया का हाल तो बुरा है ही। आस-पास की कोठियों का हाल भी दिनों-दिन बिगड़ता जा रहा है। सच मानिए चाचा, हमारे लोग बहुत कष्ट सह रहे हैं। उनकी बड़ी दुर्दशा हो रही है। अब भी उनको कोड़ों की मार सहनी पड़ती है। 'डबल कट' मज़दूरों को मारे जा रहा है। सारा दिन जी तोड़ मेहनत करने पर मज़दूरों को क्या मिलता है ? उतने में पुरे महीने भरपेट खाने का जुगाड़ करना भी मुश्किल हो जाता है। रामुदु की आवाज़ भर्रा आई।

रघु ने ताव में आकर कहा—तो आप लोग गोरों के खिलाफ़ उठ नहीं सकते क्या ? कब तक हाथ पर हाथ धरे यूं ही बैठे रहेंगे ? हम लोग तो सीना तानकर खड़े हो गए हैं। चाहे मरें या जीएं। तुम लोगों को भी कुछ करना होगा।

—यही तो रोना है। हमारा जीवन बेचारगी का जीवन है। भूख लगने पर नाराज़गी कैसे जता सकते हैं ? भाई 'आंगाज़े' तो हमारे माथे पर कलंक है।—चिन्ता प्रकट करते हुए रामुदु बोला।

—भाई रामुदु। निराश होने से तो हमारा उद्धार नहीं हो सकेगा। हमारी तरह रामचन्द्र भगवान को भी बनवास मिला था। जंगलों में क्या उन्हें सुख मिला था ? क्या वे घबरा गए थे ? क्या सीता माता निराश हो गई थीं ? क्या लक्ष्मण छलनाओं और निराशाओं के आगे झुक गये थे ?

रामुदु ने आह भर कर कहा—बरदाश्त करने की भी एक हद है चाचा। पिछले साल सावित्रिया में कई अपमानजनक घटनाएं घटीं। जो बार-बार मेरे मन में छुरा चुभोती रही हैं। खेत देर पहुंचने पर एक मजदूर को कोड़े की मार लगी। एक मज़दूर जो भोजन के समय हनुमान चालीसा पढ़ रहा था उसे भिगा करने की सज़ा मिली।

हमारे लिए न इतवार, न कोई त्यौहार। होली के दिन भी हमें काम करने के लिए मजबूर किया गया। अभी यह हाल है। आगे भगवान ही मालिक है।

रघु ने कुछ तेज होते हुए कहा— क्या आपने नहीं सुना है कि कई मज़दूरों ने आत्म-हत्या कर ली है। मां-बहनो की इज्जत लूट ली गई है। अन्न के अभाव में कई बच्चे दम तोड़ चुके हैं। चाचा हमें कुछ करना होगा, कुछ करना होगा।

—भाई यही बड़ी बात है। अपमान का ज़हर खाकर भी हम जीवित हैं। मेरा मन कहता है कि हमारे भी दिन फिरेंगे। बेचारगी से ये झुके सिर कभी उठेंगे और घमण्ड से उठे सिर झुकेंगे ज़रूर—जतन चाचा ने दृढ़ स्वर में कहा।

सन्ध्या का समय हुआ। जतन चाचा ने देवकुर के पास रखे मिट्टी का चिराग जलाया। रघु और रामुदु भी वहीं बैठ गए। संध्या शुरू हुई। "सर सर सर सर संभा कारी, सोने रूप गिरवर धारी·····

जब वे खाने बैठे तब पड़ोस की झोंपड़ी से किसी मज़दूर के गाने की दर्द भरी आवाज़ सुनाई दी—

"महीनवा में चारगो रुपिया
अंगाजे दे ले बा·····

गरम-गरम लिट्टी तोड़ते हुए जतन चाचा ने कहा—सावित्रिया में बिरहा गानेवाले तो बहुत होंगे ?

—हां दो चार हैं। शुरू-शुरू में मुझे भोजपुरी समझने में मुश्किल होती थी अब तो फटाफट बोल लेता हूं। मेरी ही तरह कई तेलुगु, मराठी और मद्रासी भाई अब भोजपुरी बोलने लगे हैं। इससे फायदा यह हुआ कि अब हम एक दूसरे को समझने लग गए हैं—रामुदु ने कहा।

—रामायण गाने वाले कितने मिलेंगे ?

— एक भी नहीं। चाचा। मैं तो कहूंगा कि आप रघु को हमारे यहां कुछ समय के लिए भेज दीजिए। ढोलक-मजीरा का इन्तजाम मैं कर लूंगा। बस, रामायण गाने का ढंग सीखना बाकी है।

—भाई, मैं तो तैयार हूं।—सहीजन का बुयों पीते हुए रघु बोला।

—भाई, रामुदु। पहले तो 'पास' निकालना पड़ेगा, तब कहीं रघु तुम्हारे यहां आ सकेगा।

भोजन के बाद जतन चाचा ने रामुदु से कहा—एक शुभ समाचार सुनाउंगा तुमको। 'मों स्वाज़ी' कोठी में कुलियों के बीच एक ब्राह्मण मज़दूर भी हैं। सुनने में आया है कि उन्होंने सत्यनारायण की कथा शुरू कर दी है। अपनी झोंपड़ी के सामने 'महाबीर स्वामी' का चबुतरा बनवाकर लाल झंडी गाड़ दी है। हम भी सत्यनारायण की कथा सुनने की बात सोच रहे हैं। इसीलिए हमने लोचन को वहां भेजा है।

— यह तो अच्छी बात है। कई कोठियों में तो लोग केवल डीह को पूजते हैं। कबूर बार कर भूत-प्रेत को बुलाते हैं। मुझे लगता है कि हम बहुत अंध-विश्वास में जी रहे हैं। आने वाले दिनों में यह हमारे लिए खतरा बन सकता है।

—बेहतर तो यही है कि लोग भगवान राम और महावीर हनुमान के गुण गाएं। सत्यनारायण स्वामी की कथा सुनें।—रामुदु की बातों का अनुमोदन करते हुए रघु ने कहा।

कुछ क्षण वे मौन रहे। फिर रामुदु कुछ सोचते हुए बोला—चाचा ! हम मज़दूरों के दुःखों का कोई अन्त होगा या नहीं, यह मुझे मालूम नहीं। लेकिन मेरा विश्वास है कि भगवान राम की पावन कथा से हमारे मन को शान्ति ज़रूर मिलेगी। हमें कांटों पर भी चलने की प्रेरणा मिलेगी।

जतन चाचा रामुदु की बातों को ध्यान से सुन रहे थे और बीच-बीच में अपने समर्थन जताने के लिए सिर हिला देते थे। फिर उन्होंने अपने अतिथि से निवेदन किया—भाई रामुदु। अब तुम सो जाओ। इतनी दूर से पैदल आये हो तुम बहुत थक गए होगे। दो-तीन दिन तो ठहरोगे ही बाकी बातें कल कर लेंगे। हां, कल रामायण का सत्संग कर रहे हैं, यह तुम्हारे लिए एक स्वर्ण-अवसर होगा।

रामुदु ने नींद की प्रतीक्षा में आंखें मूंद ली थीं। रघु उस के पैर दबा रहा था। चार साल की बात उसकी आंखों के सामने घूम गई। वह जतन चाचा से इसी झोंपड़ी में मिलने आया था जाते वक्त चाचा ने कहा था—"भाई रामुदु। हम इस देश में सुख की तलाश में आए थे। यह चीज़ हमें मिलेगी या नहीं, यह अभी कहना मुश्किल है। किन्तु एक बात पर ध्यान देना जरूरी है कि हर हालत में हमें अपने रीति-रिवाज, धरम-करम और भाषा को जीवित रखना होगा। तुम में लगन है, बड़ी बात है मुझे विश्वास है कि तुम सावित्रिया में अपने दुखी भाइयों के लिए जरूर कुछ करोगे।"

पैर दबाते-दबाते रघु को नींद आ गई थी। चिराग अब भी जल रहा था बगल में जतन चाचा सो रहे थे। पर रामुदु को प्यास लगी थी। पानी पी लेने के बाद उसने चिराग बुझाना चाहा। तभी उसकी दृष्टि चाचा पर पड़ी। उसने देखा चाचा के चेहरे पर एक गजब का तेज है। इस बात का रामुदु को गर्व महसूस हुआ कि वह एक महान व्यक्ति के इतने करीब है।

—व्याख्याता, महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस

(पृष्ठ 31 का शेष)

बाबू रोग-शय्या पर पड़े-पड़े विधान में निर्दिष्ट सारे अनुच्छेदों को जबानी कह डालते थे।

जहां पाण्डित्य है, वहां सरलता, सहृदयता, निराभिमानता एवं निश्छलता प्रायः नहीं दिखती। यह अद्भुत सुयोग रहा कि राजेन्द्र प्रसाद में ये परिवर्तीं गुण उफन कर, इस समूची धरती को रसाप्लावित करते रहे। जैसे जल से भरे बादल जमीन पर झुके से लगते हैं, वैसे ही इनका अद्वितीय व्यक्तित्व और उनमें निम्नवर्णित गुणावलि महापुरुषों की मधु-कांचन सुषमा भी थी। उनके प्रति श्रद्धा-सुमन के यही शब्दोपहार समर्पित हैं :

"राणा का धीरत्व,
शिवा का तेज, पराक्रम भीम,
तालस्ताय की पावन महिमा,
शंकर-ज्ञान असीम
शान्ति बुद्ध की, न्याय यीशु का,
विक्रम का उपहार
उपादान लेकर स्रष्टा ने
किया तुम्हें साकार।।"

—अनुभाग अधिकारी,
द्वारा मण्डल लेखा कार्यालय, पूर्वोत्तर रेलवे, वाराणसी-221002

कहानी

कविजी

★ डा. प्रमोद कुमार सिंह

सुना है, बग़ल वाले मकान में कोई लेखक आये हैं। ठीक ही तो है, ऐसे मकान में कवियों और लेखकों के अलावा और कौन रह सकता है? कवियों को मरे हुए तीन महीने बीत गये। तीन महीने से यह मकान खाली है और आज एक लेखक आये हैं? आज से करीब छः महीना पहले इस बगल वाले मकान में कवि जो रहने आये थे और बेचारे तीन महीना पहले ही तो—लेकिन नहीं, मैं आपको शुरू से इस घटना को सुनाऊं तो बेहतर होगा।

पहले मैं आपको अपना परिचय दे दूं। मेरा नाम फिरंगीमल है। मैं इस होटल का मालिक हूं, होटल क्या, भोजन, चाय, नाश्ता वगैरह का थोड़ा बहुत इन्तजाम है। आप इस होटल के सामने लटका हुआ यह बोर्ड पढ़ सकते हैं? 'रामभरोसे हिन्दू होटल प्रोपराइटर मास्टर फिरंगीमल'। कुछ लोग जलन से इसे ढाबा भी कहते हैं।

हां, तो मैं आपको कवियों के बारे में सुना रहा था। आज से करीब छः महीना पहले वे इस बग़ल वाले मकान में रहने आये थे। उनके आने के पहले यह मकान वर्षों तक खाली रहा और जनाब ऐसे मकान में भला कौन किरायेदार आयेगा? दीवारों से सिमेंट उखड़-उखड़ कर पतझड़ के पत्तों की तरह झर रहा हैं। कहीं खिड़की गायब तो कहीं दरवाज़ा नदारद। जो बचे हैं, वे भी बुढ़ापे की पीछ की तरह टेढ़े मेढ़े झुके हुए हैं। दीवालों पर काई और हरियाली का वास है, देखकर गालिब का यह शेर याद आ जाता है, "उग रहा सब्जा तेरी-दिवारों पर, हम बयाबां में हैं और घर में बहार आई है।" (यह शेर मुझे कविजी ने ही सुनाया था।) मकान के चारों ओर भी केवल झाड़ियां ही झाड़ियां, अब आप ही सोचिये भला ऐसे मकान में कवियों और लेखकों के अलावा और कौन रह सकता है।

न जाने इस मकान का मालिक कौन है? सुना है बहुत अमीर आदमी है, शहर में रहता है। इसीलिए तो उसे इस टूटे फूटे मकान की कोई भी चिन्ता नहीं।

खैर, कविजी आये तो मेरे मौहल्ले में—कम से कम मेरे घर में तो अवश्य ही एक हंगामा हो गया। मेरे ज्येष्ठ पुत्र दौड़ते हुए आये—'पिताजी, बग़ल वाले मकान में एक किरायेदार आया है।' जिस जोश से वे मुझे हिन्दुस्तान के क्रिकेट मैच में विजयी होने का शुभ समाचार सुनाते हैं उसी जोश में उन्होंने यह समाचार भी सुनाया। मैं सपरिवार बाहर निकल कर देखने गया। देखा एक दुबले पतले, तोते सी नाक वाले सज्जन आंखों पर मोटा चश्मा चढ़ाये, कांख में दरी में लपेटी हुई बिस्तर की एक पोटली दबाये, कंधे से एक पुराना झोला लटकाये, बरामदे में खड़े उस मकान को यूं देख रहे हैं जैसे कैदी अन्दर जाने के पहले जेल खाने को देखता है।

मैंने आगे बढ़कर अदब से झुककर उन्हें सलाम ठोका और अपना परिचय देते हुए कहा—"सरकार बग़ल में ही मेरा होटल है, चाय, नाश्ता, खाना सब मिलता है।"

आपकी सेवा में हमेशा हाजिर रहूंगा।' उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक घूर कर देखा फिर सिर हिलाते हुए एक कप चाय का आर्डर देते हुए अन्दर चले गये। मैं तुरन्त उनके लिये एक कप स्पेशल चाय बनाकर ले गया। चाय पीते वक्त बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि वे कवि हैं। मेरा मन खुशी से गुब्बारे की भांति फूल गया। आखिर मैं भी पढ़ा-लिखा आदमी हूं—पुराने जमाने का मिडिल पास, इसलिये पढ़े लिखे लोगों की संगत बहुत पसन्द है, चाय पीने के बाद उन्होंने पैसे दिये और मुसकरा कर बढ़िया चाय के लिये धन्यवाद दिया। एक बात मैं यहां बतला दूं कि कविजी मुस्कराते बहुत कम थे, अक्सर ये खामोश किसी गहरे विचार में डूबे रहते थे। केवल जब मैं उन्हें सुबह-सुबह डबल अंडे का आमलेट और स्पेशल चाय पेश करता था तो वे मुझे मुस्कराकर धन्यवाद देते थे—उस समय ऐसा लगता जैसे घने बादलों के बीच से सूरज निकल आया है। लेकिन सावन भादों के सूरज की तरह ऐसा कम ही होता था खैर ये सब बाद में—

जब मैंने पत्नी को यह शुभ समाचार सुनाया तो उसने बहुत ही कड़ुआ मुंह बनाया। उसे कवियों, लेखकों और पढ़े लिखे लोगों से सख्त नफरत है। वह उन्हें शंका की निगाहों से देखती है—आखिर मूर्ख जाहिल जो ठहरी।

करने दूसरे दिन से कविजी मेरे ही होटल में चाय नाश्ता और खाना खाने लगे। मेरे होटल में वे जब आते थे तो मैं भी अक्सर



उनके साथ बैठकर साहित्य-चर्चा किया करता था। कभी-कभी जब वे अच्छे मूड में रहते तो मुझे कविता, कहानी वगैरह भी सुनाया करते। हालांकि मेरी समझ में— कुछ भी नहीं आता था, परन्तु एक जानकार की भांति मैं सिर हिला-हिला कर दाद देता था, जैसे शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम में लोग अक्सर किया करते हैं। कभी-कभी जब होटल में भीड़ कम रहती (बल्कि यूं कहिये कि भीड़ ज्यादातर कम ही रहती थी।) तो मैं उनके यहां गप लड़ाने चला जाता था। वे अक्सर दरी पर बैठकर कोई मोटी पुस्तक पढ़ते रहते थे या कुछ लिखते रहते थे। (उस दरी के अलावा उस मकान में बैठने का और कोई स्थान नहीं था।) मैं उत्सुकतावश पूछता 'कविजी, क्या कोई कविता की किताब लिख रहे हैं वे कुछ जवाब नहीं देते थे, केवल मुस्कराकर रह जाते। लेकिन मैं जानता था कि वे जरूर कोई भारी-भरकम किताब लिख रहे हैं वरना ऐसे मकान में क्यों रहने आते।

एक महीने तक तो कविजी मुझे नगद पैसे देते रहे, फिर उन्होंने एक दिन मुझे बुलाकर बड़े संकोच से कहा 'भाई फिरंगी, मेरे पास के पैसे तो समाप्त हो गये। संपादक महोदय को पत्र लिखा है, आशा है, वे कुछ रुपये जल्दी ही भेज देंगे। अगर तुमको एतराज न हो तो—

मैं समझ गया, मैंने कहा—हुजूर, मैं पढ़ा लिखा आदमी हूं पुराने जमाने का मिडिल पास, कवियों और लेखकों की कद्र करना मैं जानता हूं। आप जरा भी चिन्ता न करें। आप मेरे होटल में इतमीनान से खाइये, पैसे जब भी हों दे दीजियेगा।'

कविजी ने मुझे बहुत धन्यवाद दिया। इसके बाद वे मेरे यहां उधार खाने लगे। मेरी बीवी ये सब देखकर बहुत कुढ़ती थी और रोज ताने देती थी—'और करो कवियों से दोस्ती, देखा नतीजा, मैं जानती हूं इन फक्कड़ों को।' मूर्ख औरत विद्वानों की कद्र क्या जाने।

जब एक महीना और बीत गया और कविजी के पैसे नहीं आये तो वे कुछ चिन्तित और निराश नजर आने लगे। उनकी मुस्कराहट अब और भी कम हो गई थी। हालांकि मैं तरह-तरह की बातें और मजाक करके उनका मन बहलाने की कोशिश करता था लेकिन उनके चेहरे से चिन्ता और क्लेश की छाया नहीं हटती थी। अब वे होटल भी कम ही आते थे, अक्सर उस मकान के अन्दर ही रहते थे या सामने टहलते रहते थे। अक्सर मैं उनका इन्तजार करता था और जब वे नहीं आते तो खुद ही उन्हें पत्नी की निगाहें बचाकर चाय, नाश्ता, खाना वगैरह पहुंचा दिया करता था। उनका शरीर भी पहले से ज्यादा दुबला और कमजोर नजर आता था, लेकिन उस हालत में भी वे चुप चाप बैठे कुछ न कुछ लिखते रहते थे।

इधर मौहल्ले में लोग उनके बारे में तरह-तरह की अटकलबाजियां लगाते रहते थे। कोई कहता सी. आई. डी. का आदमी है, तो कोई कहता सी. आई. ए. का एजेण्ट है। कुछ लोग कहते—वे एक महाकाव्य लिख रहे हैं, तो कुछ कहते—उपन्यास लिख रहे है। एक विद्यार्थी ने कहा वे उपसंहार लिख रहे हैं (पता नहीं यह क्या बला है) मेरी पत्नी कहती—यह मुंआ बिना पैसे चुकाए मर जाएगा।'

दो महीने यूं ही बीत गये। एक दिन की बात है, मैं होटल में रोजाना से कुछ ज्यादा व्यस्त था। शाम को अचानक याद आया कि कवि जी को अभी तक देखा नहीं। न वे होटल में आये और न ही बाहर टहलते देखा। मुझे कुछ चिन्ता भी हुई— उन्होंने अभी तक कुछ खाया भी न होगा। मैंने अपने लड़के को देखने के लिये भेजा तो उसने आकर खबर दी कि दरवाजा अन्दर से बन्द था। अब मेरी चिन्ता और भी बढ़ गयी। खुद जाकर देखा, दरवाजा वास्तव में बन्द था। खिड़की से झांक कर देखा तो कविजी नीचे फर्श पर तिरछे पड़े थे उनके हाथ से खुली हुई कलम लुढ़क कर नीचे गिरी थी। ताज्जुब हुआ। उनके लेटने का ढंग भी कुछ ऐसा अजीब था कि डर भी लगने लगा। खिड़की से बहुत चिल्लाने पर भी जब वे टस से मस न हुए तो मैंने मौहल्ले के कुछ लोगों को बुलाकर सलाह-मशविरा किया और सब ने मिलकर दरवाजा तोड़ने का फैसला किया। दरवाजा तोड़कर हम लोग अन्दर घुसे तो देखा कि कविजी मरे पड़े थे। सब अवाक् और सन्न हो गये। किसी समझदार आदमी ने दौड़कर पुलिस को खबर किया।

पुलिस आयी और उसके बाद तो पूछिए मत-भीड़ लग गयी, एक तमाशा खड़ा हो गया, कस्बे भर के लोग जमा हो गये। दरोगा जी ने अगल-बगल तहकीकात किया और होटल में मुझसे भी पूछताछ करने आये। मुझे डर भी लग रहा था, कहीं ऐसा न हो कि पुलिस मुझे भी फंसा दे—आप लोग तो पुलिस की आदत जानते ही होंगे, लेकिन मालुम हुआ कि पुलिस को एक चिट्ठी मिली है जिसे कविजी ने मरने के पहले लिख छोड़ा था। उस चिट्ठी में उन्होंने लिखा था कि वे गरीबी से तंग आकर नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या कर रहे हैं। (पता नहीं उन्हें नींद की गोलियों के लिये पैसे कहां से मिले-शायद बेचारे ने उतने पैसे बचाकर रक्खे थे या हो सकता है वह भी उधार ही लाये हों, आज तक पता न चला सका) चिट्ठी की बात सुनकर मेरी जान में जान आयी, मैंने मन ही मन परमात्मा और कविजी दोनों को धन्यवाद दिया।

पुलिस कविजी की लाश लेकर उस मकान में ताला लगा कर चली गयी और इधर तरह-तरह की अटकलबाजियां फिर से शुरू हो गयीं। मेरे होटल में तो लोगों की ऐसी भीड़ लगी कि जनाब पूछिये मत। लोगों को चाय नाश्ता सर्व करते-करते नाक में दम हो गया। हालांकि आमदनी पूरी हुई।

दूसरे दिन शहर से एस. पी. साहब और डी. आई. जी. साहब भी तशरीफ लाये—साथ में सिपाहियों और प्रेस रिपोर्टरों की भीड़। उन लोगों को देखने के लिये कस्बे के लोगों की भीड़ यूं उमड़ पड़ी जैसे चिड़ियाखाने में रविवार को बच्चों की भीड़ उमड़ती है। मुझे तो सांस लेने को भी फुर्सत नहीं। वह दिन मेरे

और मेरे होटल के लिये महान दिन था। एस. पी. साहब और डी. आई. जी. साहब ने मुझसे बात-चीत की और मेरी बनायी हुई स्पेशल चाय पी। बग़ल वाले मकान के अनेक फोटो लिये गये, प्रेस रिपोटरों ने मुझ से तरह-तरह के सवाल पूछे। उन लोगों ने एक फोटो मेरा भी लिया। दुकान की बिक्री इतनी बढ़ गयी कि हम लोग सुबह से शाम तक दौड़ते-दौड़ते परेशान हो गये। सुना था, भगवान लोगों को छप्पर फाड़ कर लक्ष्मी देता है लेकिन मुझे उसने सदर दरवाजे से ही लक्ष्मीको भेज दिया। पत्नी का मुंह लाटरी में इनाम जीतने वाले की तरह चमक रहा था। अगले दिन कविजी का फोटो अखबारों में मुख्य पृष्ठ पर छपा। उनके जीवन और मृत्यु के समाचारों से अखबार रंगे हुए थे। देश के विख्यात कवि—जिन्होंने निर्धनता के कारण आत्म-हत्या कर ली—विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, क्रान्तिकारी व्यक्तित्व वगैरह। नीचे एक कोने में एक मेरी भी छोटी सी तस्वीर छपी थी—राम भरोसे हिन्दू होटल के मालिक मास्टर फिरंगीमल। जिनके यहां कवि सम्राट···जीवन के अंतिम दिनों में उधार खाया करते थे। उधार के नीचे लाल निशान लगाकर मैंने उसकी कटिंग शीशे में मढ़वा दी है, आप सामने की दीवार पर उसे देख सकते हैं।

उसके बाद तो दिनोंदिन भीड़ बढ़ने ही लगी। तरह-तरह के लोग दूर-दूर से आते थे और उन्हें देखने के लिए कस्बे के लोग आते थे। कोई कहता मैं फलां पत्रिका का रिपोर्टर हूं तो कोई कहता फलां पत्रिका का फोटोग्राफर। कोई कहता-अध्यापक हूं तो कोई कहता सम्पादक हू। उन लोगों के सवालों की बौछारों में मैं डूब सा गया। उन रंग बिरंगे लोगों की भीड़ से मेरा होटल सुबह से शाम तक चमकता रहता था। ग्राहकों की इस भीड़ से जब अकेले निबटना असंभव हो गया तो मुझे पहली बार दो नौकर रखने पड़े। मैं अक्सर पत्नी से पूछा करता—'कहो कवियों और लेखकों की दोस्ती का फायदा देख लिया न ?' वह मुस्कराकर पके हुए टमाटर की तरह लाल हो जाती। आप ये नये-नये कुछ टेबुल-कुर्सी देख रहे हैं न ? ये सब मैंने उसी जमाने में बनाये थे। ओह ! क्या जमाना था।,

एक दिन दो रिपोर्टर आये—एक मोटा-सा, भालू की भांति, दूसरा दुबला पतला तोते की तरह। कंधे से एक टेपरिकार्डर और कैमरा लटकाये हुए। भालू ने मेरे मुंह के सामने एक छोटा सा औजार रख दिया और मेरा-नाम पता पूछने के बाद कहा—महाकवि की कविताओं में दार्शनिक प्रवृत्तियों एवं वैयक्तिक अनुभूतियों के समन्वय, युग प्रवर्तक, मानववादी कृतित्व के पर्याय, शून्यवाद एवं प्रगतिवाद का सम्मिश्रण, सामाजिक उन्नयन-एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण-वगैरह वगैरह। मैं आश्चर्य चकित उसका मुंह टुकुर-टुकुर ताकता रहा। कुछ संभल कर मैंने हाथ उठाकर बीच में रोककर कहा—'जनाब, हालांकि मैं पढ़ा लिखा आदमी हूं पुराने जमाने का मिडिल पास, लेकिन मेरी अंग्रेजी, जरा कमजोर है। अच्छा होगा कि आप हिन्दी में सवाल पूछिये।' इस पर वह भालू, गैंडे की तरह मुंह खोलकर ठठा कर हंसा और बोला-'इडियट'। मुझे बुरा तो बहुत लगा लेकिन में सभ्यता वश चुप रह गया। इस पर तोता हंसकर बोला—'अरे यार भैंस के आगे क्यों बीन, बजाते हो' ? और उसने पूछा—'कविजी से आपकी जान-पहचान कैसे हुई। वे आपके यहां अक्सर क्या-क्या खाते थे, क्या शराब भी पीते थे ? कितने दिनों तक उन्होंने आपके यहां उधार खाया ?' वगैरह वगैरह।

सवाल-जवाब खत्म होने के बाद दोनों चाय पीकर जाने लगे, जब मैंने चाय के पैसे मांगे तो भालू ने मुस्कराकर कहा—'हम लोग रिपोर्टर हैं, हम लोगों को हर जगह फ्री सर्विस मिलती है। जहां न पहुंचे रवि वहां पहुचे कवि और जहां न पहुंचे कवि वहां पहुंचे रिपोर्टर।' यह जवाब देकर दोनों बिना दाम दिये चलते बने। मुझे बुरा तो लगा लेकिन क्या करता ?

एक दिन तो एक बड़ी बस में ढेर सारे रंग-बिरंगे लोग आये। कोई बग़ल वाले मकान का फोटो खींचता तो कोई डायरी निकाल कर कुछ लिखता। एक-दो फोटो उन लोगों ने होटल के भी खींचे। एक से एक खूबसूरत मर्द और औरत—एक से एक खूबसूरत पोशाक में। घंटों तमाशा चलता रहा, भीड़ उमड़ती रही। लोगों ने कहा···ये लोग फिल्म वाले हैं, कविजी की जिन्दगी के ऊपर एक फिल्म बनेगी। आप कल्पना कर सकते हैं कि यह खबर फैलते ही कितनी भीड़ जमा हुई होगी, क्या हंगामा हुआ होगा। सुना है आजकल वह फिल्म बम्बई में चल रही है। लाखों की आमदनी हो रही है।

उसके बाद एक दिन एक बहुत ही मोटे सूटेड-बूटेड सज्जन एक बहुत बड़ी मोटर में आये। आंखों पर सुनहरा चश्मा लगाये, नाक पर रूमाल रक्खे, कड़ुआ मुंह बनाये, उन्होंने दरवाजे से ही मेरे होटल का निरीक्षण किया। लोगों ने कहा-यही वे प्रकाशक हैं जो कविजी की किताबे छापते थे।' मैंने सुदामा की भांति विनम्रता और दयनीयता दिखाते हुए उन्हें कविजी का बकाया बिल और स्पेशल चाय पेश किया तो उन्होंने मुझे यूं घूर कर देखा जैसे शेर चूहे को देखता है और बिना बिल चुकाये और बिना चाय पीये ही दरवाजे से ही वापस चले गये। लोगों ने कहा—प्रकाशक महोदय पुलिस स्टेशन गये हैं, कवि जी की पाण्डुलिपि लेने। किताब छपेगी। बहुत मांग है। लाखों की बिक्री होगी। शायद इन्हीं माडर्न कृष्ण को कविजी रुपये भेजने के लिये लिखा करते थे।

आप समझ ही गये होंगे कि इन हंगामों के बीच मेरा समय कैसे गुजरता होगा। सुबह से शाम तक फुर्सत नहीं रहती थी। होटल की बिक्री बरसात के घास की तरह बढ़ गयी। लेकिन एक महीने बाद धीरे-धीरे लोगों का आना कम होने लगा। गर्मी के नालों की तरह ग्राहक का बहाव सूखने लगा, आमदनी भी कम होने लगी और अब तो कविजी को मरे तीन महीने गुजर चुके हैं, बीवी की मुस्कराहट भी फीकी और कम हो गयी है।

लेकिन आज यह शुभ समाचार मिला है कि उसी मकान में एक लेखक महोदय आये हैं। लगता है मेरी तकदीर का दरवाजा एक बार फिर खुलने वाला है, शायद ईश्वर की मुझ पर फिर से कृपा होगी।

आप तो मेरा मतलब समझ ही गये होगे। आशा है कि यह लेखक महोदय भी कुछ दिनों में—समझ गये न ?

—राज भवन औषधालय, राज भवन, पटना-800022

अजातशत्रु की याद

★ प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद

भारत के प्रथम अजातशत्रु थे काशी के उपनिषतकालीन राजा जो अपने ब्रह्म ज्ञान और सुशासन दोनों के लिए समान रूप से प्रसिद्ध थे। दूसरे अजातशत्रु थे बौद्धकालीन मगध के सम्राट जिन्होंने अंग, लिच्छवी और काशी जनपदों को जीत कर मगध राज्य का विस्तार किया। तीसरे थे भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डा. राजेन्द्र प्रसाद जो आधुनिक भारत के निर्माताओं में अपने गुणों के कारण 'अजातशत्रु' माने जाते थे। स्वतन्त्रता के पहले भी और बाद में भी, जब-जब देश नेताओं के आपसी मतभेद और खींचतान के भंवर में पड़ा, नेतृत्व की बागडोर संभालने के लिए देश के कौने-कौन से 'अजातशत्रु' राजेन्द्र बाबू का स्मरण किया गया और हर अवसर पर उन्होंने अपनी सेवा-भावना, कार्य-कुशलता, कुशाग्रता, कर्त्तव्य-निष्ठा, लगन, दूरदर्शिता एवं स्वभाव की सरलता के कारण सबको समान भाव से मुग्ध कर लिया।

सन् बयालीस के "भारत छोड़ो" आंदोलन के बाद, जेल से छोड़े जाने पर, जब सन् 1946 में राजेन्द्र बाबू पहले पहल पटना पधारे थे तो उनके सम्मान में पटना जिला कांग्रेस कमेटी के मुख्य कार्यालय नेशनल हाल, सदमकुआं के कार्यालय के मैदान में आयोजित सभा में मुझे नजदीक से उन्हें देखने-सुनने का अवसर मिला क्योंकि में वहां मंच पर विराजमान नेताओं के लिए स्वयं-सेवक के रूप में कार्य कर रहा था। इसके पहले सन् 1940 की रामगढ़ कांग्रेस में उनकी एक झलक अवश्य मिली थी पर भारी वर्षा के कारण तथा अपनी अल्पवय के कारण भी, राजेन्द्र बाबू या अन्य नेताओं के दर्शन से अधिक कुछ और जानने-समझने का अवसर न था। हां, उस अधिवेशन की मोहकता का जादू आज भी मन प्राण को अभिभूत किये हुए है।

नेशनल हाल की उस सभा का सभापतित्व डा. सच्चिदानंद सिन्हा कर रहे थे और मंच पर बिहार के सभी प्रमुख नेता विराजमान थे। राजेन्द्र बाबू कुछ अस्वस्थ थे और डा. सिन्हा नहीं चाहते थे कि ऐसी स्थिति में वे लम्बा भाषण करें। लेकिन बार-बार इशारा करने पर भी जब राजेन्द्र बाबू बोलते ही जा रहे थे तो सभापति ने वक्ता के गले में अपनी छड़ी डालकर अपने आदेश का पालन करवा लिया! डा. सिन्हा के इस वात्सल्य भाव का तब सभी श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

डॉ. सिन्हा भारत की संविधान सभा के अस्थाई अध्यक्ष चुने गये थे। उन्हीं की अध्यक्षता में राजेन्द्र बाबू स्थाई अध्यक्ष चुने गये। संविधान जब तैयार हुआ तब अपनी अस्वस्थता के कारण डा. सिन्हा सभा की बैठक में उस पर हस्ताक्षर करने के लिए दिल्ली न आ सके। राजेन्द्र बाबू स्वयं संविधान की प्रति लेकर पटना डॉ. सिन्हा का हस्ताक्षर लेने के लिए गये। ऐसा मधुर और आत्मीय संबंध था इन दो महापुरुषों का!

(2)

राजेन्द्र बाबू भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। संविधान सभा के अध्यक्ष का कार्य उन्होंने जिस कुशलता के साथ निभाया था उससे भी अधिक, कुशलता, कालीनता, दूरदर्शिता और मर्यादा के साथ उन्होंने राष्ट्रपति के कार्य-भार का वहन किया। राष्ट्रपति भवन जैसे भव्य भवन में रहकर भी उन्होंने अपनी निस्पृहता, सेवावृत्ति और सादगी के कारण गोस्वामी तुलसीदास की इस उक्ति को चरितार्थ कर दिखाया—

"अवध राजु सुर राजु सिहाई।
दशरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमी चंपक बागा॥"

वैसे राजेन्द्र बाबू के दर्शन यदा-कदा होते रहते थे परन्तु उनके अधिक निकट आने का सौभाग्य तब प्राप्त हुआ जब मैं सन् 1962 में लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होकर दिल्ली आया। लोक सभा और राज्य सभा की संयुक्त बैठक में उन का अंतिम सम्बोधन हुआ। उस संबोधन में उन्होंने सरकार की उपलब्धियों और नीतियों पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त चुनाव पर बढ़ते हुए खर्च के खतरे के प्रति राष्ट्र के प्रहरियों को जिस प्रकार से सावधान किया वह उनकी दूरदर्शिता का परिचायक तो था ही, उसमें उन जैसे उन राष्ट्रप्रेमियों की मनोव्यथा भी अभिव्यक्त हो रही थी जिन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चरणों में बैठकर लोक-सेवा का व्रत धारण किया था। राजेन्द्र बाबू की उस मनोव्यथा में यथार्थ का कितना पुट था, इसका अंदाज इसीसे लग सकता है कि चीनी आक्रमण के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं कहा था कि वह एक स्वप्न-लोक में रह रहे थे।

संसद भवन के सेंट्रल हाल में राष्ट्रपति के उस भाषण की रोज गरमागरम चर्चा होती थी जिसके साथ यह बात भी कही जाती थी कि अब राजेन्द्र बाबू के बाद डॉ. राधाकृष्णन राष्ट्रपति होंगे। इसी बीच मेरा छोटा भाई, बिहार में एक इंजीनीयरिंग कालेज में पढ़ रहा था, दिल्ली आ गया उसने राष्ट्रपति भवन

देखने की इच्छा प्रकट की। उसके दिल्ली आने के पहले से ही मैंने राष्ट्रपति से मिलने के लिए समय ले रखा था। अतः उस अवसर पर मैं राष्ट्रपति भवन दिखाने के लिए अपने भाई को साथ लेता गया। निर्धारित समय पर राष्ट्रपति से भेंट करने के लिए मुझे उनके अध्ययन-कक्ष में बुलाया गया। मैंने अन्य बातों पर बातचीत करने के अलावा उनके भाषण के उस अंश की भी चर्चा उठाई जिसमें चुनाव-खर्च को कम करने का सुझाव दिया गया था। उन्होंने कहा कि इस मुद्दे पर विस्तार से विचार तो पंडितजी को अन्य सभी दलों के नेताओं से मिलकर करना चाहिए। इसे वे भारतीय लोकतन्त्र के आरोग्य एवं आयुष्य के लिए अत्यंत आवश्यक मानते थे। बीच-बीच में वे पंडितजी का जिस आदर के साथ उल्लेख करते थे उससे उन दोनों की पारस्परिक आत्मीयता का पता चलता था क्योंकि, बाद में पंडितजी की बात में भी मैंने राजेन्द्र बाबू के प्रति वैसा ही सम्मान का भाव पाया। अतः दोनों के मतभेदों के बारे में बातें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर उन लोगों के द्वारा प्रचारित की जाती थीं जिनकी दाल ऐसे हवा-पानी में ही गलती थी।

राजेन्द्र बाबू के सामने जब मैंने इस बात की चर्चा उठाई कि राष्ट्रपति-पद से मुक्त होकर दिल्ली से पटना जाने के अवसर पर उनका नागरिक अभिनंदन और बिदाई-समारोह किया जाना चाहिए तो वे मौन हो गये।

बातचीत करते समय मैं बीच-बीच में बाहर देखता था तो उन्होंने सहज भाव से पूछा कि कोई और साथ आया है क्या? जब मैंने बताया कि छोटा भाई साथ है तो घंटी बजाकर उसे बुला लाने का आदेश दिया। आने पर उन्होंने बड़ी आत्मीयता से उससे पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा तथा कई प्रकार के बिस्कुट खिलाये। उसके ऐसे स्नेह को कोई कैसे आजीवन विस्मरण कर सकता है?

चलते समय उन्होंने कहा कि पटना आने पर मिला कीजिएगा। मैंने उनके इस आदेश का बराबर पालन किया।

राजेन्द्र बाबू के नागरिक अभिनंदन और बिदाई-समारोह की चर्चा मैंने पहले सत्यनारायण बाबू से की। उन्होंने पंडितजी से इसकी चर्चा करने की सलाह दी। पंडितजी इस सुझाव से प्रसन्न हुए और उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई। उसके बाद आयोजन की तैयारी शुरू हुई और समारोह जैसा भव्य और शालीन रहा, वर्षा के बावजूद जैसी उपस्थिति रही, वैसा समारोह न तो दिल्ली में उसके पहले कभी हुआ था, न उसके बाद ही कभी हुआ। राजेन्द्र बाबू उस अवसर पर जैसे भाव-विभोर हुए वैसा उन्हें कभी किसी ने नहीं देखा था।

(3)

सन् 1962 के चीनी आक्रमण ने भारत के ऋतुराज पंडित जवाहरलाल नेहरू को ही नहीं सोये भारत को झकझोर दिया। जिस आचार्य कृपलानी ने उस वर्ष के बजट अधिवेशन में सरकार के डेढ़ सौ करोड़ रुपये के फौजी खर्च को फिजूलखर्ची कहा था वही आचार्य सरकार की असावधानी और सैनिक तत्परता के अभाव की अब कटु आलोचना करने लगे। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने भी सरकार की असफलता और शिथिलता की आलोचना की। लेकिन संभवतः सबसे तीखे आलोचक थे भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन जो निजी बातचीत में सरकार की ही नहीं पंडित नेहरू की भी कटु आलोचना करते थे और अहमदाबाद की एक सार्वजनिक सभा में भी सरकार की बड़ी निर्मम आलोचना कर डाली थी। वे संसद-सदस्यों को भी राष्ट्रपति भवन में बुला-बुलाकर पंडितजी के खिलाफ भड़काने लगे। मुझे उन्होंने इस लायक नहीं समझा था कि बुलाया जाय। पंडितजी से जब मैं मिला तो मुझे ऐसा लगा कि इसकी भनक उन्हें मिल गई है और वे इससे बहुत दुखी प्रतीत हुए।

राष्ट्रीय संकट की ऐसी घड़ी में मुझे राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री के बीच की यह बढ़ती खाई खतरनाक प्रतीत हुई और मैंने राष्ट्रपति से मिलने के लिए समय मांगा। समय तुरंत मिल गया। अभिवादन के बाद जैसे ही मैं बैठा कि राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की आलोचना में अपना धारा-प्रवाह भाषण शुरू कर दिया। करीब पन्द्रह मिनटों तक मैं स्तब्ध रहकर उनकी बात सुनता रहा। अंत में जब वे पंडितजी के संबंध में व्यक्तिगत भी चर्चा करने लगे तो मैंने उनसे बड़ी विनम्रता के साथ पूछा कि क्या वे प्रधानमंत्री बनकर देश की बागडोर संभालना पसन्द करेंगे? ऐसा सुनते ही वे मानो आसमान से धरती पर आ गिरे और बोले कि यह कैसे संभव है? तब मैंने उन्हें कहा कि फिर ऐसी निजी और सार्वजनिक आलोचनाओं से चीनी आक्रमण से टूटे पंडितजी के हृदय पर और आघात पहुंचाने से क्या लाभ? यद्यपि इसके बाद भी डॉ. राधाकृष्णन की पंडितजी की आलोचना बंद नहीं हुई परन्तु ऐसा वह निजी कक्ष में ही करते रहे, सार्वजनिक रूप में नहीं, और वह भी उतने उग्र और कटु रूप में नहीं।

इसके बाद मैं पटना जाने पर सदाक़त आश्रम में, राजेन्द्र बाबू से मिलने गया। मैंने जब यह सब उन्हें बताया तो उनकी आंखों में आंसू आ गये और उन्होंने खड़े होकर मुझे गले लगा लिया। संयत होने पर उन्होंने कहा कि दो टूटे हृदयों को जोड़ने का जो काम आपने किया है, उसे मैं कभी नहीं भूलूंगा।

मेरा अनुभव है कि छोटे-छोटे कार्यकर्त्ता ही बड़े-बड़े नेताओं के बीच में मतभेद पैदा करवाकर अपनी-अपनी पूछ बढ़ाने का सरल रास्ता अपनाते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि उनके ऐसे उत्तरदायित्वहीन ओछे आचरण से राष्ट्र का कितना बड़ा अहित होता है। आज चारों ओर जरूरत है खाई चौड़ी करने की नहीं बल्कि इसे पाटने की।

(4)

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू की मूर्तियों को भारत की राजधानी में समुचित स्थानों पर लगवाने में भारत सरकार ने टालमटोल की जो नीति अपनाई है उसकी अक्सर आलोचना होती रही है। गांधीजी के लिए राजघाट और गांधी-स्मारक-निधि की स्थापना हुई, पंडित जी के लिए शांतिवन और नेहरू स्मारक संग्राहलय एवं पुस्कालय की पर राजेन्द्र बाबू के लिए कोई ऐसी चीज़ स्थापित न की जा सकी। अतः इस उद्देश्य की किंचित पूर्ति के लिए बाबू जगजीवन राम की अध्यक्षता में राजेन्द्र भवन ट्रस्ट बनाया गया जिसके सचिव श्री रामेश्वर ठाकुर (राज्य सभा के वर्तमान सदस्य) हुए। दिल्ली के तत्कालीन उपराज्यपाल श्री बालेश्वर प्रसाद के प्रयत्न के कारण दीनदयाल उपाध्याय मार्ग पर ट्रस्ट को राजेन्द्र स्मारक भवन के निर्माण के लिए उपयुक्त जगह भी मिल गई और अब भवन का निर्माण-कार्य भी समाप्त-प्राय है। राजेन्द्र बाबू की जन्म-शताब्दी के इस वर्ष में इस भवन के विधिवत उद्घाटन का कार्य भी यथासमय संपन्न हो जाएगा।

राजेन्द्र बाबू भारतीय ग्रामीण संस्कृति की सनातनता के सर्वोत्तम प्रतीक थे। भारत के संविधान में राष्ट्रपति को जो अधिकार दिये गये हैं उनका उन्होंने कभी दुरुपयोग नहीं किया, एक राष्ट्रनेता के रूप में उनका जो बड़ा भारी प्रभाव था उसका भी उन्होंने कभी व्यक्तिगत हितों के लिए उपयोग नहीं किया, प्रकांड पांडित्य और सार्वजनिक जीवन के इतने दीर्घकालिक अनुभव के बावजूद उन्होंने अपने अनुभवों और विचारों को प्रकाशित कर अपने को ऊंचा और दूसरे समकालीनों को ओछा दिखाने का कभी प्रयास नहीं किया, हजारों कार्यकर्ताओं की चुपचाप मदद की पर जिसकी कानोंकान खबर भी वर्षों बाद ही मिल पाती थी और जब उनसे कोई चर्चा करता था तो वे चुप लगा जाते थे।

भारत में आज विघटनकारी तत्व पुनः सक्रिय हो गये हैं और कभी भाषा, कभी धर्म, कभी समुदाय, कभी प्रांतीयता या किसी और रूप में, अपना सिर उठा रहे हैं। ऐसे संकट के समय स्वभावतः अजातशत्रु राजेन्द्र बाबू की याद बार-बार आती है क्योंकि ऐसे हर संकट के समय उन्होंने अपनी सूझ-बूझ से लोगों के हृदय को जोड़ने में अद्भुत सफलता पाई थी। उनकी सफलता का रहस्य उनकी निश्छलता और सादगी में निहित था। बाबू गंगाशरण सिंह उनके ऐसे अनेक संस्मरण सुनाते हैं। आज का भारत उन जैसे अजातशत्रु का केवल रस्मी-शताब्दी-समारोह ही मनाएगा या अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में उन मूल्यों और आदर्शों को भी चरितार्थ करेगा जिनके वे प्रतीक थे?

—बी-60 साउथ एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110049.

(सम्पादकीय का शेष)

मंदिर-अरहतों की समाधियां) उनका आदर-सत्कार करते और उनकी पहले की गई धार्मिक बलि को नहीं छीनते, और (7) क्या बाहर के अरहत उनके राज्य में आ सकते हैं और सुगमतापूर्वक विचरण कर सकते हैं। इन सभी प्रश्नों का सकारात्मक उत्तर प्राप्त करने पर बुद्ध ने कहा था कि जब तक बज्जी इस मंत्र का अनुसरण करते रहेंगे तब तक उनके अभ्युदय और वृद्धि की ही आशा करनी चाहिए।

कहना न होगा कि वैशाली के लोकतंत्र पर संकट के समय भगवान बुद्ध के द्वारा पूछे गए ये प्रश्न और उनके प्रधान शिष्य आनन्द के उत्तर हमारे आज के भारतीय लोकतंत्र के लिए अत्यन्त प्रासंगिक हैं, और समग्र भारत ने अब तक आये संकटों के समय अपनी एकता का परिचय देकर इनका वही उत्तर दिया है जो आनन्द ने भगवान बुद्ध को दिए थे। हमारे ये चुनाव एक ऐसे समय में हो रहे हैं जब देश के सामने भीतर और बाहर दोनों तरफ से संकट की घड़ी उपस्थित है। महात्मा बुद्ध की ओर से निराश हो जाने पर अजातशत्रु ने वर्षकार को छद्म रूप में वैशाली भेज कर वहां की एकता भंग की थी। आपस में फूट पड़ जाने के बाद ही उसके लिए वैशाली को पराजित करना सम्भव हो सका था। आज कुछ विदेशी ताकतों ने हमारे विरुद्ध षड्यंत्र रचा है और कुछ आंतरिक तत्व भी हमारी एकता को भंग कर हमारे लोकतंत्र को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। हमें पूरा विश्वास है कि पहले की ही तरह हम फिर एक बार एकजुट होकर शांति के वातावरण में ये चुनाव सम्पन्न कर अपने लोकतंत्र की मजबूती का परिचय देंगे।

मोरिशस में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का उद्‌भव और विकास

हिन्द महासागर के लघु द्वीप मोरिशस के जंगलों को उद्यान में परिणत करने के लिये भारतीय शर्तबंद मजदूरों को 1834 से लाया जाने लगा। सन् 1834 से 1870 तक उन मजदूरों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। गौरांगों की कोठियों पर उनके साथ दासों का सा अमानुषीय व्यवहार किया जाता था।

सन् 1872 में सौभाग्य से महात्मा देप्लेविस्स ने भारतीय मजदूरों की करुण स्थिति का चित्र विश्व के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने एक पुस्तिका के जरिये यह कार्य किया था। सुनने में आता है कि किसी प्रवासी भारतीय ने उस पुस्तिका का हिंदी में अनुवाद किया था, किन्तु उसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है। उस पुस्तिका ने ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित किया जिसके फलस्वरूप एक जांच आयोग की नियुक्ति हुई। उक्त जांच आयोग की रिपोर्ट 1873 में प्रकाशित हुई।

प्रहलाद रामशरण

वह रिपोर्ट चार खंडों में है। आज भी उसे पढ़ने पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अतः उसके बाद से भारतीय मजदूरों के जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन आना स्वाभाविक था।

सन् 1875 के बाद से शर्तबन्द मुक्त भारतीयों की संख्या बढ़ने लगी। वे छोटे-छोटे गांव बसाने लगे। अपनी बचत के पैसे से जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े खरीदने लगे। मजदूर से अब वे छोटे-छोटे खेतिहार बनने लगे। अपनी संतानों को पाठशाला भेजने लगे। इसका अच्छा परिणाम निकला। कुछ समय के बाद उनकी संतानें अध्यापक व सरकारी कामों पर नियुक्त होने लगीं किन्तु 1900 तक स्थिति यह रही कि कोई ढाई लाख भारतीयों में से मुश्किल से एक—दो दर्जन लोग ऐसे कामों पर नियुक्त थे।

इसलिए 1901 में जब मोहनदास कर्मचन्द गांधी दो सप्ताह तक मोरिशस में ठहरे तो पोर्ट लुई में उनके स्वागत में जो समारोह आयोजित किया गया उनमें एक भी भारतीय उपस्थित नहीं था। गांधीजी बीसवीं सदी के प्रथम दशक से ही सार्वजनिक सभाओं में राजनीतिक विषयों पर हिन्दुस्तानी में भाषण करने लग गये थे।



हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की पृष्ठभूमि

मोरिशस के पुरालेख गृह के निदेशक और सह-निदेशक महाशय तुसे और आदोलक ने 1954 में एक बृहदाकार ग्रन्थ सूची प्रकाशित की थी। इसमें देश विदेश में मोरिशस पर प्रकाशित ग्रन्थ, समाचार पत्र, सरकारी रिपोर्ट व लेखों आदि का उल्लेख हुआ है। यह ग्रन्थ छह भागों में विभाजित है, और इसके दूसरे भाग में मोरिशस में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की पूरी-पूरी सूची दी गई है।

हिंद महासागर के आस-पास के अनेकों देशों में मोरिशस को पत्रकारिता की दिशा में अग्रस्थान प्राप्त है। यहां का प्रथम समाचार पत्र 1773 में 'पंचित आफिस' नाम से फ्रेंच भाषा में प्रकाशित हुआ था। सन् 1773 से 1954 के बीच मोरिशस में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 606 बताई गई है। इनमें भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 23 बतायी गई है, जिनमें हिंदी पत्र पत्रिकाओं की संख्या 17 है, तमिल की 3, गुजराती की 2, और उर्दू की एक।

इस खोज के दौरान और तथ्य सामने आये हैं। मोरिशस के फ्रेंच भाषी पत्रों में भारतीय भाषाओं का प्रथम विज्ञापन 1868 में तमिल में प्रकाशित हुआ था। गुजराती और उर्दू भाषाओं का प्रयोग 1906 के पत्रों से हुआ। किंतु अभी यह बताना सम्भव नहीं है कि हिंदी भाषा का प्रयोग मोरिशस में किस साल से शुरू किया गया था।

डाक्टर मणिलाल को 'हिन्दुस्तानी'

श्रीयुत मगनलाल मणिलाल डाक्टर 1907 में मोरिशस पधारे थे। उन्होंने ही अप्रवासियों के हित के लिये 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका का प्रकाशन 15 मार्च, 1909 से शुरू किया था। शुरू में यह पत्रिका अंग्रेजी और गुजराती में थी, बाद में यह अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशित की जाती रही किंतु यह बताना सम्भव नहीं कि 'हिन्दुस्तानी' के किस वर्ष के किस अंक में हिंदी का प्रचलन हुआ। जो पत्रिका 1909-10 तक साप्ताहिक थी और 1910 14 तक दैनिक उस पत्रिका की फाइल न पुरा लेख-गृह में ही मौजूद है और न ही उस संस्था के पास जिनको इसका प्रकाशन भार सौंपा गया था।

मोरिशस के पुरालेख गृह में उसकी कोई प्रति न हो ऐसी बात नहीं। 'हिन्दुस्तानी' का प्रथम अंक और मार्च 1913 का एक अंक अभी सुरक्षित है। उक्त पत्रिका का प्रथम अंक अंग्रेजी और गुजराती में है—जबकि मार्च 1913 वाला अंक अंग्रेजी और हिंदी में। इसी प्रकार से मार्च 1914 का एक अंक पण्डित वासुदेव विष्णुदयाल जी के पास सुरक्षित है।

उपयुक्त तीनों प्राप्त अंकों के आधार पर यह माना जा सकता है कि मई 1913 के 'हिन्दुस्तानी' में होली विषय पर जो लेख और कविता छपी है वहीं मोरिशस में प्रकाशित हिंदी का प्रथम उपलब्ध लेख और प्रथम कविता है। यहां एक और तथ्य सामने आया है, उक्त लेख और कविता को पढ़कर कोई भी बता सकता है कि तत्कालीन 'हिन्दुस्तानी' पर आर्य समाज विचारधारा का पूरा प्रभाव था।

आर्य समाज-धार्मिक जागरण का अग्रदूत

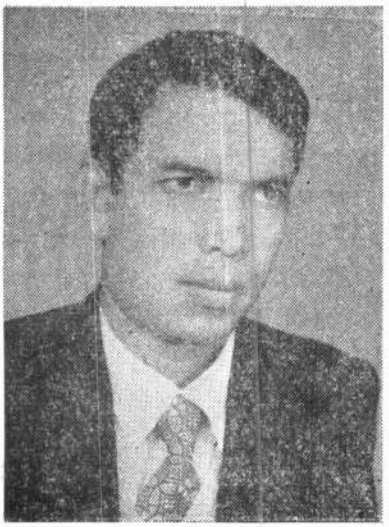
पं. आत्माराम जी ने 'हिन्दू मोरिशस' नाम के स्थूलकाय ग्रंथ में लिखा है कि 1897 में अंग्रेजों की एक पलटन यहां आयी थी। उसी में भोलानाथ तिवारी नामका एक सिपाही था। उनके पास स्वामी दयानंद का 'सत्यार्थ प्रकाश' था। 1902 में भारत लौटते समय उस सिपाही ने वह पुस्तक मोरिशस के किसी व्यक्ति के पास छोड़ दी। इस तरह वह पुस्तक एक हाथ से दूसरे हाथ पहुंचने लगी और अन्त में वह खेमलाल लाला जी के हाथ लग गई। उसे पढ़कर यह व्यक्ति पौराणिक धर्म का विरोधी बन गया। अब वह मौका ढूंढने लगा और कथा व श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों के साथ उलझ पड़ता। इस व्यक्ति ने 1903 में प्रथम बार आर्य समाज की नीव डाली थी।

विलायत के एक प्रोफेसर ने मणिलाल डाक्टर के जीवन पर दस-बारह हजार शब्दों का एक लेख लिखा है। उस लेख में उन्होंने कहा है कि मणिलाल डाक्टर पर मोरिशस के आर्य समाज का प्रभाव पड़ा था। श्री खेमलाल लाला ने क्युजीयं में दूसरी बार 1906 में आर्य समाज की स्थापना की। जिसका प्रमाण एक तत्कालीन दैनिक से प्राप्त हुआ है। इन सारी बातों के बल पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मणिलाल डाक्टर के आगमन से पहले मोरिशस में स्वामी दयानंद और आर्य समाज का संदेश फैल चुका था। शायद इसीलिये 1911 में जब मणिलाल डाक्टर जी मोरिशस छोड़ने लगे तब उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका और' हिन्दुस्तानी प्रैस' का संचालन आर्य समाजियों के सुपुर्द किया था।

'मोरिशस आर्य पत्रिका' का जन्म

पं. आत्माराम के अनुसार पोर्ट लुई आर्य समाज का जन्म 1910 में मणिलाल डाक्टर जी की उपस्थिति में हुआ था, उसके एक साल बाद से अर्थात् 1 जून 1911 से 'मोरिशस आर्य पत्रिका का जन्म हुआ था। तुसें महोदय के मतानुसार यह पाक्षिक पत्र था जो हिंदी व अंग्रेजी में निकलता था। श्री रामधन पूरण जी के अनुसार उक्त पत्र का सम्पादन कार्य श्री खेमलाल जी करते थे। उनके अस्वस्थ हो जाने पर—स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने दो वर्षों तक इसका सम्पादन कार्य सम्भाला था। यह पत्र 1916 में बंद हो गया।

'हिन्दुस्तानी' और 'मोरिशस आर्य पत्रिका' के बंद होने के अनेक कारण थे। श्री हीरालाल गुप्त के अनुसार—दोनों दलों (आर्य समाजी और सनातनी) के कार्य से शिथिल हो धर्माधर्म के



प्रहलाद रामशरण

टण्टे में पड़े। इससे लोगों में अरुचि प्रकट होने लगी और वे मासिक चंदा चुकाने में आना कानी करने लगे। जिससे छपाई में बाधा पड़ने लगी और अंत में दोनों पत्रों को बंद करना पड़ा।'

मोरिशस की हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का उद्भव और विकास धार्मिक नवजागरण से हुआ है इस तथ्य को कोई नहीं अस्वीकार करेगा, और धार्मिक नवजागरण का श्रेय इस देश में आर्य समाज को प्राप्त है। उधर बताया गया है कि मणिलाल डाक्टर पर आर्य समाज का प्रभाव था, और बाद में आर्य समाजियों द्वारा जब 'मोरिशस आर्य पत्रिका' का प्रकाशन शुरू हो गया, तब इस देश के सनातनी भाई संगठित होकर आर्य-समाजियों का मुकाबला करने के उपाय ढूंढ़ने लगे। इस तरह श्री राम लाल तिवारी ने मार्च 1912 को 'आरियण्टल गजेट' नामक पत्रिका निकालनी शुरू की। तुर्से महोदय ने इसका उल्लेख नहीं किया, किंतु एक तत्कालीन दैनिक के एक लेख से पता चला है कि उक्त पत्रिका का प्रकाशन हुआ था। इसके साथ-साथ यह भी पता चला है कि उक्त पत्रिका का सिद्धांत मणिलाल डा. के कार्यों के खिलाफ और गोरांग पूंजीपतियों के हक में था।

उपर्युक्त दोनों पत्रिकाओं के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं दी जा सकती, क्योंकि उनकी कोई भी प्रति कहीं उपलब्ध नहीं हैं।

मोरिशस के कुछ सफल सम्पादक

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में धार्मिक नवजागरण के जरिए प्रवासियों में नव-चेतना का जो बीजारोपण हुआ, उसके फलस्वरूप हिंदी के पठन-पाठन को अधिकाधिक गति मिली। यह हिंदी पत्रकारिता के लिए उपयोगी थी। प्रथम विश्व युद्ध के दिनों में प्रवासियों को डा. भारद्वाज और स्वामी स्वतंत्रतानंद की सेवाएं प्राप्त थीं। तब तक आर्य समाज ने कोई चार दर्जन हिंदी की सायंकालिक पाठशालाएं खोल दी थीं, और प्रथम आर्य वैदिक स्कूल का द्वार 1918 में खुल चुका था।

आर्य समाज ने सन् 1910 में पंडित रामवैद्य को उच्च शिक्षा के लिए भारत भेजने का प्रबंध किया था। वे पंजाब के लाहौर स्थित डी. ए. वी. विद्यालय में वर्षों तक शिक्षा ग्रहण कर 1912 में स्वदेश लौटे थे। आते ही उन्होंने कुछ समय तक 'हिन्दुस्तानी' का संपादन कार्य किया था। वे आर्य समाज के प्रथम उपदेशक थे, किंतु कुछ ही समय बाद समाज वालों से झगड़ा हो गया और वे पौराणिक खेमे में चले गए। वे अच्छे कथा वाचक थे। उन्होंने सन् बीस में कुछ वर्षों तक बारी-बारी से 'मोरिशस इन्डियन टाइम्स' और 'मोरिशस मित्र' का सम्पादन किया था। ये सफल निबंध कार थे। इनके निबंध 'मोरिशस मित्र' में छपते थे। इन्हीं को मोरिशस का प्रथम लेखक होने का श्रेय प्राप्त है। इनका देहान्त 1936 में हुआ।

आर्य समाज ने दूसरे युवक काशीनाथ किष्टों को 1912 में भारत भेजने का प्रबंध किया। ये भी लाहौर के डी. ए. वी. विद्यालय में अध्ययन करके 1916 में स्वदेश लौटे। ये सफल उपदेशक थे। आते ही आर्य समाज के उपदेशक बन गये। इन्हीं की देख-रेख में आर्यन वैदिक स्कूल खोला गया था। 1924 से इन्होंने 'मोरिशस आर्य पत्रिका' का और 1929 से 'आर्य वीर' का सम्पादन किया। ये मृत्यु पर्यन्त 'आर्यवीर' के सम्पादक रहे। इन्होंने चार बालपयोगी पुस्तकें लिखी हैं। इनका देहान्त 1947 में हुआ।

पं. आत्माराम जी 31 वर्ष की आयु में मणिलाल डाक्टर के कहने से 'हिन्दुस्तानी' का सम्पादन सम्भालने के लिए भारत से आये थे। ये बहुभाषी थे। अंग्रेजी, हिंदी, गुजराती, मराठी और फ्रेंच के विद्वान् थे। इन्होंने कालक्रम से 'हिन्दुस्तानी' मोरिशस आर्य पत्रिका, और 'आर्योदय' का सम्पादन किया। इन्होंने ग्यारह पुस्तकें लिखी हैं। इनका देहान्त 1955 में हुआ।

श्री नरसिंह दास जी लेहोसे के रहने वाले थे। इन्होंने हिन्दुस्तानी प्रेस की देखभाल तन मन धन से की थी। ये उसके प्रथम हिंदी सम्पादक थे। ये तेलुगू भाषी थे। परन्तु इन्होंने हिंदी में भी दो-तीन पुस्तकें लिखी हैं। इन्हें प्रवास में तेलुगू की प्रथम पुस्तक लिखने का श्रेय प्राप्त था। सन् 30 में ये 'सनातन धर्मा' के संपादक बने और लगभग दस वर्षों तक आर्य समाजियों के साथ धार्मिक विषय पर वाद विवाद करते रहे। इनका देहान्त 1949 में हुआ था।

सन् बीस की पत्र-पत्रिकाएं

सन् बीस का साल मारिशसीय पत्रकारिता के इतिहास में बड़ा महत्व रखता है 1916 से 1920 तक प्रवास में हिंदी की कोई पत्र-पत्रिकाएं नहीं थी। किंतु इसी बीच प्रवास के प्रथम हिन्दू बैरिष्टर श्री राम खेलावन बुधन का आगमन हो गया था।

ये विलायत जाने से पहले आर्य समाज के सदस्य थे। 1915 में लंदन में महात्मागांधी से इनकी भेंट हुई थी अतः यह स्वाभाविक था कि महात्मा गांधी के जीवन से प्रभावित हुए। इसीलिये सन् 1949 में इन्होंने अंग्रेजी में कोई डेढ़ सौ पृष्ठों का एक ग्रंथ महात्मा जी के जीवन पर लिखा।

(क) मोरिशस इन्डियन टाइम्स

श्री राम खेलावन बुधन और श्री कोलेसर जी ने सन् 1920 में 'मोरिशस इन्डियन टाइम्स' नामक दैनिक समाचार पत्र को जन्म दिया। 'हिन्दुस्तानी' के बाद मोरिशस का यह द्वितीय हिंदी दैनिक था जो अंग्रेजी और हिंदी में निकलता था। किंतु यह पत्र 1924 के मध्य में बंद हो गया इसके प्रथम संपादक श्री द्वारका जी थे। इस पत्र की भाषा अपरिष्कृत थी। पत्र को बंद होने से रोकने के लिए संपादक महोदय ने जुलाई 1924 के दो अंकों में प्रवासी जनता से अपील करते हुए, उक्त पत्र को 'दुग्धागौ' और 'वृद्धा माता' से तुलना की थी, परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ और यह पत्र अगस्त 1924 में बंद हो गया।

(ख) मोरिशस मित्र

किंतु 25 अगस्त 1924 से हिंदी जगत में एक दूसरे दैनिक पत्र 'मोरिशस मित्र' का आगमन—हुआ। यह राजनीतिक पत्र था। इसका प्रकाशन अंग्रेजी, फ्रेंच और हिंदी में होता था। इसके प्रथम संपादक पं. राम अवध थे। बाद में पं. मुक्तराम चटर्जी। पं. मुक्तराम के समय में हिंदी विभाग का कार्य श्री लक्ष्मणसिंह जी संभालते थे। इस पत्रिका की शैली कुछ परिष्कृत थी। आर्य समाज के सिद्धांतों का खूब खंडन करता था। इसी के कालम में 'प्रेरितपत्र' लेख छपते थे जिनमें आर्य समाज की आलोचना खूब होती थी।

(ग) मोरिशस आर्य पत्रिका

दिनांक 17 अक्तूबर 1924 से आर्य समाजियों का मुखपत्र 'मोरिशस आर्य पत्रिका' का पुनः प्रकाशन शुरू हुआ। इसके प्रथम संपादक पं. काशीनाथ जी थे, बाद में श्री मुजबसासिंह जी, पं. वेणीमाधवजी, पं. बलराम जी आदि। इसी समय भारत से श्री मेहता जैमिनि और बाद में स्वामी विज्ञानानंद जी का आगमन हुआ था। श्री मेहता, जैमिनि जी के अनेक लेख इस पत्र में प्रकाशित हुए थे। इसी समय से श्री विष्णुदयाल बंधु 'मारिशस आर्य पत्रिका' में लेख लिखने लगे थे।

फरवरी 1925 में स्वामी दयानंद सरस्वती की जन्म शताब्दी के अवसर पर 'मोरिशस-आर्य पत्रिका' का एक सुन्दर विशेषांक निकाला गया था। यह मोरिशस में छपा प्रथम विशेषांक था। यह पुस्तकाकार था। इसमें पं. आत्मराम, पं. रामअवध, पं. काशीनाथ और श्री मेहता जैमिनि आदि के लेख थे।

1927 में 'सनातन धर्म पत्रिका' का प्रकाशन भी हुआ। इसी प्रकार से 1927 में 'अलंकारिका' नाम की एक हिंदी पत्रिका निकली थी। किंतु उपर्युक्त अल्पकालिक पत्रिकाओं की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है।

(घ) आर्यवीर

सन् 1926 में आर्य समाज के संचालकों में मतभेद हो गया और एक की जगह दो सभाएं हो गयीं। फिर तो दूसरी सभा ने 3 मई 1929 से 'आर्यवीर' साप्ताहिक पत्र को जन्म दिया। यह भी अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशित होता था। पं. काशीनाथ जी हिंदी विभाग के संपादक थे। पं. जी ने मृत्युपर्यन्त इसका सम्पादन किया।

(च) सनातन धर्मांक

यद्यपि यह सन् बीस की पत्रिका नहीं थी। फिर भी इस पत्र के उद्देश्य और विषय वस्तु को ध्यान में रखकर इसका उल्लेख यहां किया जा रहा है। सन् 1932 के आरम्भ में 'मोरिशस मिल' का प्रकाशन बंद हो गया। इसके तुरन्त बाद उसके कार्यालय से 'संचालन धर्मांक' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। इसके संपादक श्री नरसिंह दास थे। इन्होंने लगभग दस वर्षों तक आर्य समाजियों से लोहा लिया। किंतु यह पत्रिका भी 1942 में बंद हो गई।

संघर्ष का परिणाम

एक ओर 'मोरिशस मित्र' और 'सनातन धर्मांक' तो दूसरी ओर 'मोरिशस आर्य पत्रिका' और 'आर्यवीर' धार्मिक और सैद्धान्तिक विषयों को लेकर उलझ पड़ते थे। दोनों वर्गों के पत्रों में 'प्रेरित पत्र' नामक कालम खोला गया था। आर्य समाजियों तथा सनातनियों के बीच प्रश्नोत्तर खूब होते थे। आप्रवासियों के बीच इस तरह लम्बे अर्से तक संघर्ष करते रहने से एक दूसरे पर अच्छा और बुरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अच्छा इसलिए क्योंकि जहां संघर्ष होता है, वहीं अमृत जैसा रक्त निकलता है। इस संघर्ष ने आप्रवासियों को सजग होकर धर्म-कर्म के मामले में आत्म संशोधन का पाठ सिखलाया। उनकी राजनीतिक रुचि को जगाया। बुरा प्रभाव इसलिए कि कार्यक्रम से प्रायः समस्त सनातनी पत्रों का प्रकाशन बंद हो गया। सन् बीस और सन् तीस में सनातनियों द्वारा शुरू किए गए दो दैनिक और एक मासिक पत्र बंद हो गया। जबकि आर्य समाज की दोनों पत्रिकायें सफलता पूर्वक प्रकाशित होती रहीं। यहीं नहीं 1942 में 'सनातन धर्मांक' के बंद हो जाने पर भी 'जागृति' और 'आर्यवीर' 1950 तक बराबर निकलते रहे।

पत्रकारिता की दिशा में आर्य समाजियों की व्यवस्था सनातनियों से अच्छी होती थी। सन् 1946 में पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी ने वर्तमान पत्रों की दुर्दशा उप शीर्षक के अंतर्गत लिखा था 'इस समय इस प्रवास में जो पत्र-पत्रिकाएं निकलती हैं उनमें सबसे पुराना 'आर्य मित्र' दूसरा 'आर्य वीर' तीसरा 'सनात

धमाका है। ये तीनों धर्म के नाम पर आठ-आठ आंसू गिराते हैं। 'आर्य पत्रिका' और आर्यवीर' संस्थाओं की सहायता नहीं पाते तो ग्राहकों को मुंह दिखाना असम्भव हो जाता।

प्रथम हस्त-लिखित-पत्रिका

बीसवीं शताब्दी के तीन दशकों तक मोरिशस में राजनीतिक और धार्मिक विषयों पर चार-चार पत्र-पत्रिकाएं निकाली जाती रहीं किंतु सही तौर पर एक भी साहित्यिक पत्र का जन्म अभी नहीं हुआ था। इस कमी की पूर्ति मोताई लोग स्थित हिंदी प्रचारिणी सभा के संचालकों ने 'दुर्गा' नाम की हस्तलिखित साहित्यिक पत्रिका निकाल कर ही की। इसका प्रकाशन लगभग दो वर्षों तक होता रहा। यह पत्रिका मासिक थी और हिंदी प्रचारिणी सभा के छात्र इससे लाभ उठाते थे। दिसम्बर 1937 में यह बंद हो गयी।

सन चालीस : पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़

1909 से 1939 तक मोरिशस के पत्र-पत्रिकाओं ने जो आयाम तय किया था, उसका निखार सन् चालीस में देखने को आया था। इसके कारण थे सन् 1939 तक इस देश के आप्रवासी बुद्धिजीवी दो वर्गों में बंटकर पत्रकारिता की दिशा में आगे बढ़ रहे थे। एक वर्ग सजग था। वह धार्मिक और समाजिक क्षेत्रों में सर्वांगीण सुधार का हिमायती था। दूसरा वर्ग सुधार का नाम तो लेता था। पर वह अपने पुराने पद से तिल-भर भी हटना नहीं चाहता था। ऐसी विषम परिस्थिति में दो प्रवासी बुद्धिजीवियों का आगमन हुआ। दोनों ने इन दोनों वर्गों को संगठित करना चाहा। इस कार्य के लिये एक ने राजनीति का क्षेत्र चुना दूसरे ने सांस्कृतिक।

डा. शिवसागर रामगुलाम जी विलायत से डाक्टरी की शिक्षा पाकर 1935 में स्वदेश लौटे। सन् 1940 में उन्हें विधान सभा में भारतीयों के प्रतिनिधित्व के रूप में चुना गया। तब से वे देश की राजनीति में कूद पड़े। उन्होंने कुछ मित्रों के सहयोग से 1940 में 'अडवान्स' नामक अंग्रेजी फ्रेंच दैनिक को जन्म दिया।

पं. वासुदेव विष्णु दयाल जी भारत से उच्च शिक्षा प्राप्त करके दिसम्बर 1939 में स्वदेश लौटे थे। इस समय आर्य समाजी और सनातन वर्गों के अलावा, मजदूर दल के तत्वावधान में सर्वहारा वर्ग भी सिर उठा रहा था। अतः यह स्वाभाविक था, विलायत से शिक्षा प्राप्त करके लौटे हुए युवा वर्ग इसी वर्ग के जरिए राजनीति में सफलता पाने की आकांक्षा रखते थे। उपर्युक्त वर्णित दोनों व्यक्तियों का कार्यक्षेत्र शुरू से ही अलग-अलग रहा है। दोनों महानुभावों ने सन् चालीस में एक-एक हिंदी पत्र को जन्म दिया। दोनों पत्रों को एक तरह से दलीय पत्र कहा जा सकता है।

डा. रामगुलाम ने 4 मई 1984 को 'जनता' अर्द्ध साप्ताहिक पत्र को जन्म दिया। यह बाद में चलकर साप्ताहिक बना। इसके प्रथम सम्पादक श्री जयनारायण राय जी थे। इसे हिन्दी का प्रथम बृहत् आकार का पत्र माना जा सकता है। पं. विष्णु दयाल जी ने 8 जून 1948 से 'जमाना' पाक्षिक पत्र को जन्म दिया। यह अंग्रेजी, फ्रेंच और हिन्दी में निकलता था, जबकि 'जनता' केवल हिन्दी भाषा में। इस पत्र ने बहुत लम्बे अर्से तक एक राजनीतिक दल का विरोध किया था। सन् चालीस में एक तरह से पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गयी थी। सन् 1939 से ही 'मोरिशसआर्य पत्रिका' का नाम बदल कर 'जागृति' रखा जा चुका था। उपर्युक्त तीन पत्रों के अलावा इस दशक में और तीन पत्र निकाले गये। छोटे आकार का 'मासिक चिट्ठी' नामक समाचार-पत्र मोरिशस का प्रथम हिन्दी पत्र माना जा सकता है। यह 1942 से 1945 का साप्ताहिक निकला था और 1946-50 तक मासिक। इसका प्रकाशन सरकारी सार्वजनिक सहयोग कार्यालय द्वारा होता था। तुर्से महोदय के मतानुसार यह एक सांस्कृतिक पत्र था। इसी प्रकार से हिन्दू प्रेस से 'सैनिक' (मासिक-पत्र) का प्रकाशन 1 जुलाई, 1946 से 1 मई, 1947 तक हुआ था। इसी तरह 'मजदूर' नाम के पाक्षिक पत्र के एक दो अंक जुलाई 1948 में निकाले गये थे। इन दोनों पत्रों के सम्पादक श्री विका नखतवर सिंह जी थे और दोनों हिन्दू प्रेस में निकाले गये थे। सन् पचास में 'जागृति' और 'आर्य वीर' को 'आर्योदय' नामक 'साप्ताहिक-पत्र' में विलय कर दिया था। 18 सितम्बर 1954 से 'वर्तमान' साप्ताहिक का प्रकाशन चालू किया गया था। यह हिन्दी का धार्मिक और सांस्कृतिक पत्र था। इसके सम्पादक पं. रामसेवक तिवारी जी थे। किन्तु अभी तक मोरिशस में एक भी साहित्यिक पत्रिका का जन्म नहीं हो पाया था। इसी तरह श्री मोहनलाल मोहित जी ने प्रति वर्ष दीपावली के अवसर पर 'दीपावली संदेश' नामक वार्षिक-पत्रिका सन् 1955 से 1959 तक निकाली थी। यह भी धार्मिक और सांस्कृतिक पत्रिका थी।

'अनुराग' एक साहित्यिक पत्र

पं. दौलत शर्मा ने जुलाई 1960 से 'अनुराग' पत्रिका को जन्म दिया। यह इस देश की प्रथम साहित्यिक पत्रिका थी। सन् 1969 से उक्त त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन श्री सोमदत बखोरी जी द्वारा स्थापित हिन्दी परिषद के द्वारा होने लगा। यह पत्रिका सन् 1977 तक जारी रही। इस पत्रिका ने मोरिशस के अनेक नवोदित लेखकों को उभारने का अवसर प्रदान किया है। हिन्दी परिषद ने मोरिशसीय पत्रकारिता की नींव सुदृढ़ की है।

श्री सूर्य प्रसाद मंगर भगत जी के सम्पादन में 7 अक्टूबर 1960 से 1964 तक 'नव जीवन' पाक्षिक पत्र का प्रकाशन नवान्दा प्रेस से हुआ था। यह भी एक साहित्यिक पत्र था। जो चार वर्षों बाद बन्द हुआ था। इसी तरह अक्टूबर 1960 से 'समाजवाद' अर्द्ध साप्ताहिक का जन्म हुआ यह पत्र एक वर्ष बाद बन्द हो गया। यह पत्र राजनीतिक मसलों पर उत्तेजनापूर्ण लेख प्रकाशित करता था। श्री देवी महोदय ने 'कांग्रेस' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन सफलता पूर्वक 1964-66 तक किया

था। इसी तरह श्री मुनिश्वरलाल चिन्तामणि जी ने हिन्दी लेखक संघ के तत्वावधान में 'बाल सखा' नामक बाल पत्रिका को दो महीनों तक चलाया था।

स्वातन्त्र्योत्तर पत्र-पत्रिकाएं

मोरिशस की स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की वृद्धि रुक सी गयी थी। 1968 से 1970 तक 'आर्योदय', 'जनता', 'जमाना' और 'अनुराग' के अलावा प्रायः समस्त पत्र-पत्रिकाएं बन्द हो गयीं थीं। किन्तु यह स्थिति चिरकाल तक नहीं रही। सन् सत्तर में देश की आर्थिक स्थिति ने करवट बदली। औद्योगिकरण के कारण देश की आर्थिक स्थिति में निखार आया था। अतः यह स्वाभाविक था कि इस दशक में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन जोर पकड़े। सन् 1973 से 1975 तक श्री छविलाल विदेशी जी के सम्पादकत्व में 'दर्पण' त्रैमासिक का प्रकाशन हुआ था। इसी प्रकार से 1972 से 1976 तक भारती रंग मंदिर द्वारा 'आभा' का प्रकाशन हुआ। प्रशिक्षण महाविद्यालय द्वारा 1972-74 तक 'प्रकाश' का सम्पादन हुआ। ऐसे ही 1977-79 तक मोरिशसीय सरकार के सूचना विभाग द्वारा परिवर्तन' का प्रकाशन हुआ। 1977 में 'अनुराग' का प्रकाशन बन्द होते ही महात्मा गांधी संस्थान की पत्रिका 'बसंत' का प्रकाशन शुरु हो गया। उपर्युक्त समस्त पत्रिकाएं साहित्यिक और त्रैमासिक थीं।

विशेषांक प्रणाली का महत्व

इस देश में पत्र-पत्रिकाओं के विषयगत 'विशेषांक' निकालने की परिपाटी आर्य समाज ने चलायी है। आर्य परोपकारिणी ने 1925 में 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' की जन्म शताब्दी के अवसर पर 'मोरिशस आर्य पत्रिका' का एक विशेषांक निकाला था। यह मोरिशस का प्रथम विशेषांक था।

इसके बाद से प्रतिवर्ष दीपावली महोत्सव के अवसर पर विशेषांक निकालने का नियम-सा बन गया है। तदुपरान्त सन् 1933 में स्वामी दयानन्द के अर्द्ध निर्वाण शताब्दी के अवसर पर 'आर्य वीर' पत्रिका का एक विशेषांक निकाला गया। इसी तरह से नवम्बर 1936 में 'मोरिशस आर्य पत्रिका' का प्रवेशांक और दिसम्बर में 'बलिदानांक' निकाला गया था।

इसी सन्दर्भ में कुछ भारतीय विशेषांकों का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा क्योंकि उनका प्रकाशन मोरिशसीय पत्रकारिता के लिए बड़ा महत्व रखता है। सन् 1922 में 'मर्यादा' का प्रवासी विशेषांक-3, 1926 में 'चांद' और 1930 में 'विशाल भारत' के प्रवासी विशेषांक अत्यन्त प्रसिद्ध विशेषांकों में से हैं। उनमें तत्कालीन लेखकों सम्पादकों और सामाजिक एवं राजनीति नेताओं के चित्र हैं।

श्री राम गोविन्द त्रिवेदी जी 1926-27 में मोरिशस में थे, वे वेदाचार्य थे। उनके अनेक लेख वेदों पर 'मोरिशस मित्र' के पृष्ठों पर देखे जा सकते हैं। भारत लौटकर सन् 1930 से 1942 तक उन्होंने 'गंगा' नाम की सांस्कृतिक-मासिक-पत्रिका का प्रकाशन काशी से किया था। सन् 1950 से प्रतिवर्ष दीपावली के अवसर पर 'आर्योदय' का विशेषांक निकाला जाता है। सन् 1970 में मोरिशसीय आर्य समाज की हीरक जयन्ती मनायी गयी थी। उस अवसर पर एक सुन्दर विशेषांक निकला था। 1975 में आर्य समाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर 'आर्योदय' के दो विशेषांक निकाले गये थे। इसी तरह के 1973 में मोरिशस में आयोजित बारहवें आर्य माह सम्मेलन के अवसर पर बम्बई से 'धर्म बोध' और दिल्ली से 'सार्वदेशिक' पत्रिकाओं के 'आर्य महा सम्मेलन' विशेषांक निकाले गये थे। इसी प्रकार से सन् 1977 में दिल्ली से 'मधुरलोक' पत्रिका का आर्य मोरिशस विशेषांक निकाला गया था।

सन् सत्तर से मोरिशस की हिन्दू महा सभा प्रति वर्ष महाशिवरात्रि के अवसर पर 'शिवरात्रि' विशेषांक निकालती रही है। यह सिलसिला 1973 से शुरु हुआ है। अब तक निकाले गये विशेषांकों में 'गीता अंक' और हिन्दूत्व अंक' काफी लोकप्रिय रहे हैं। इसी सन्दर्भ में दो स्मारिकाओं का उल्लेख करना आवश्यक है। 1974 में सार्वदेशिक सभा में 'आर्य महा सम्मेलन' के उपलक्ष्य में मोरिशस पर एक सुन्दर स्मारिका निकाली थी। यह पठनीय है। इसी प्रकार से 'धर्म युग' का अगस्त 1974 का अंक तथा जून 1976 का 'मोरिशस विशेषांक' उल्लेखनीय है। सन् 1976 में मोरिशस में हुए द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर 'महात्मा गांधी संस्थान' द्वारा भी एक महत्वपूर्ण स्मारिका निकाली गयी थी।

अल्पकालिक पत्र-पत्रिकाएं

मारिशस की कुछ पत्र-पत्रिकाएं अल्पकाल तक निकाली जाती रही हैं। इनमें सर्व प्रथम 'सनातन धर्म पत्रिका' का नाम आता है। यह 1926 में निकाली गई थी। ऐसे ही 1927 में 'अलकारिका' की एकाध प्रतियां निकाली गई थीं। तदुपरान्त 1931 में श्री गिलानन्द जी ने 'वसन्त' की एक-दो प्रतियां निकालीं। 1946 में एक साल तक 'सैनिक' मासिक पत्र निकाला गया था। सन् 1948 में हिन्दू प्रेस से 'मजदूर' पाक्षिक पत्र केवल एक महीने तक निकाला गया। 'वर्तमान' नाम का साप्ताहिक पत्र 1953 में लगभग एक साल तक निकला था। जबकि 1954 में 'मजदूर' नामक साप्ताहिक पत्र का एकमात्र अंक ही निकला था। सन् 1960 में 'अनुराग' त्रैमासिक की केवल दो प्रतियां निकाली गयी थीं। इसी प्रकार से सन् 1977-78 में केन्द्रीय सूचना विभाग की 'परिवर्तन' नामक पत्रिका की तीन प्रतियां निकाली गयी थीं। हिन्दी लेखक संघ का 'बाल सखा' दो महीने बाद बन्द हो गया था। इसी तरह से 1974 में 'त्रिवेणी' नामक एकमात्र पत्रिका का प्रकाशन त्रिवेणी क्लब द्वारा हुआ था।

पचहत्तर वर्षों का आयाम

मोरिशस में पिछले पचहत्तर वर्षों से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा है। इस काल के पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों पर नजर दौड़ाने से बहुत सारे तत्व सामने आते हैं। प्रथम प्रवास के किसी भी देश में हिन्दी की इतनी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन नहीं हुआ है जितना मोरिशस द्वीप में। यहां के अनेक लेखक और सम्पादक भारत में भी सम्मानित हुए हैं, खास कर पत्रकारिता के क्षेत्र में। ब्रजनाथ माधव इनमें से एक है जो आज के सम्पादक रह चुके हैं। सन् बीस के पत्रों पर प्रतिपादित विषय अत्यन्त सीमित होते थे। जैसे परदेश, समाचार, स्थानिक समाचार, तार समाचार चिट्ठी पत्रों, सूचना, विज्ञापन, द्योडा खबर (घुड़दौड़ समाचार) व दरियाइ समाचार आदि। बाद के वर्षों में इस परिधि का विस्तार होता गया। फिर भी सनातनी पत्रों का दायरा अत्यन्त सीमित था। किन्तु आर्य समाजी पत्रों का दायरा बड़ा विस्तृत होता था। इसके अलावा स्थानीय आर्य समाजी पत्रों का सम्बन्ध भारत की 'आर्य पत्रिका' 'आर्य मित्र' और 'वैदिक मेनाजोन' जैसी पत्रिकाओं के साथ होता था। और मारिशस के तत्कालीन पत्रों में उक्त पत्रों के लेखों का उद्धरण होता था।

इसके अलावा यद्यपि डाक्टर मणिलाल जी ने राजनीतिक पत्र को प्राथमिकता दी थी तो भी उसके बाद से धार्मिक विषयों पर अधिकांश पत्र-पत्रिकाएं निकाली जाती रहीं। इसके अलावा सन् बीस और सन् तीस में जैसे-जैसे भारतीय स्वतंत्रता का आंदोलन जोर पकड़ता गया और गांधी के व्यक्तित्व का निखार होता गया, वैसे वैसे स्थानीय आर्य समाजी पत्रों से उनका जिक्र होता था।

1942 से पहले——की ——अधिकांश———पत्र-पत्रिकाएं ——द्विभाषी और त्रिभाषी होती थीं। इसके आधार पर 'मासिक चिट्ठी' हिन्दी का प्रथम पत्र माना जा सकता है। आगे चलकर जनता, नवजीवन, समाजवाद और कांग्रेस आदि समाचार पत्र भी पूर्ण रूप से हिन्दी भाषा में निकले थे। सन् पचास में 'आर्योदय' भी केवल हिन्दी में निकलता था।

राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, साहित्यिक आदि विषयों पर आधारित लेखों द्वारा विषयगत परिधि का विस्तार सन् पचास के बाद के पत्रों में देखने में आता है। एक बाल पत्रिका का अल्पकाल तक निकलना इस तथ्य का प्रमाण है कि मोरिशस के हिन्दी लेखक और पत्रकार समय समय पर तरह-तरह के प्रयोग करते रहे हैं। यद्यपि उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं में महिला समस्याओं पर अत्यन्त न्यून मात्रा में लेख प्रकाशित होते रहे हैं, तो भी पूर्ण रूप से—— महिलाओं की कोई पत्र-पत्रिका अभी नहीं निकाली गई है।

इन सारी बातों को देखते हुए लगता है कि मोरिशस की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का दायरा अभी भी पूर्ण रूप से उभरा नहीं है। इसलिए स्थानीय युवा पाठकों को ज्ञान-विज्ञान खेलकूद आर्थिक और औद्योगिक तथा कृषि सम्बन्धी विषयों के ज्ञानार्जन के लिए अन्य भाषाओं के समाचार पत्र पर निर्भर होना पड़ता है। सन् 1920 से 1932 तक किसी भी रूप में एक दैनिक हिन्दी पत्र का प्रकाशन होता था, किन्तु तबसे आज तक मोरिशस में हिन्दी दैनिक का नितान्त अभाव रहा है। यह आज तक एक सपना ही बना रह गया है।

हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य

विगत 75 वर्षों के बाद भी, मोरिशस की हिन्दी पत्र-पत्रिकाएं आज लडखड़ा रही हैं। साढ़े चार लाख हिन्दू आबादी में एक भी राजनीतिक समाचार पत्र नहीं प्रकाशित हो रहा है। सन् 1976 के चुनाव में एवं सुखदेव विष्णु दयाल जी की पार्टी की हार के बाद से 'जमाना' का प्रकाशन बन्द हो गया। इसी तरह से सन् 1982 के चुनाव में मजदूर दल और सर शिवसागर रामगुलाम जी की हार के बाद से 'जमाना' का प्रकाशन भी बन्द हो गया। ठीक इसी तरह से सन् साठ में 'समाजवाद' और 'कांग्रेस' आदि पत्र भी अपने-अपने नेताओं की चुनाव में हार जाने से बन्द हो गये। सन् 1932 में यही बात 'मोरिशस मित्र' पर लागू हुइ थी। सन अस्सी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लिए स्वस्थ नहीं रहा है। विगत दशक में प्रकाशित कोई पांच त्रैमासिक पत्रिकाएं आज बन्द हैं। 'जनता' और 'जमाना' का पुनः प्रकाशन सम्भव नहीं लग रहा है। आजकल केवल दो पत्रिकाएं निकल रही हैं। —'आर्य सभा मोरिशस द्वारा आर्योदय' पाक्षिक और महात्मा गांधी —संस्थान द्वारा त्रैमासिक 'बसन्त' एक पत्रिका धार्मिक और सांस्कृतिक है तो दूसरी साहित्यिक और सांस्कृतिक। इसके अलावा प्रतिवर्ष दीपावली के अवसर पर 'आर्य सभा द्वारा 'आर्योदय' का विशेषांक निकाला जाता है और 'हिन्दू महा सभा' द्वारा शिवरात्रि महोत्सव के अवसर पर 'शिवरात्रि विशेषांक'। आजकल की स्थिति को देखकर कौन कह सकता है कि प्रवासी सन् बीस की स्थिति से आगे बढ़ पाये हैं।

— 30 रोरी लियेनार्ड स्ट्रीट
बो बासें, मोरिशस

हिन्दी के प्रथम समाचार पत्र

★ डॉ. जे. एच. आनन्द

हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में माना जाता है कि हिन्दी भाषा का प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' है, जो बनारस से सन् 1826-27 में छपा था।

वास्तव में 'उदन्त मार्त्तण्ड' हिंदी भाषा का प्रथम समाचार पत्र नहीं है। यह हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों की बड़ी भूल है। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'गुप्त निबन्धावली' में लिखा था कि बनारस में लिथोग्राफ में मुद्रित 'बनारस अखबार' ही हिंदी का पहला समाचार पत्र है। श्री ब्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय की खोज से 'उदन्त मार्तण्ड' का पता चला। यह हफ़्ते में एक बार छपता था, और इसके कुल पचास अंक निकले थे। श्री ब्रजेन्द्र नाथ ने 'उदन्त मार्तण्ड' से विस्तृत उद्धरण देकर 'विशाल भारत' पत्रिका में फरवरी-मई 1931 में चार लेख लिखे थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी पुस्तक 'बंगला सामयिक पत्र' में, जिसका प्रकाशन सन् 1939 में हुआ था, 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रथम अंक के पहले पृष्ठ का चित्र दिया था, और कुछ उल्लेख किया था (पृष्ठ 124-26)। तब से हिंदी साहित्य के प्रायः समस्त इतिहासों मे श्री ब्रजेन्द्र नाथ की सूचना के आधार पर 'उदन्त मार्तण्ड' को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना गया है, जो इतिहास की गंभीर भूल है, और जिसका निवारण बहुत आवश्यक है।

मैं अप्रैल 1972 में लन्दन गया था, और वहां मैंने ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी और इंडिया आफिस लाइब्रेरी में छः महीने तक हिंदी भाषा की आदि मुद्रित पुस्तकों पर कार्य किया था। मैं हिंदी साहित्य के इतिहास से संबंधित अनेक नई खोजों के साथ लौटा हूं। उनमें से एक हिंदी के प्रथम समाचार पत्र से संबधित है।

हिंदी साहित्य के जागरूक पाठक कलकत्ता के समीप (अठारह मील दूर) श्रीरामपुर मिशन केन्द्र के अद्भुत योगदान से परिचित हैं। उत्तर भारत में श्रीरामपुर मिशन केन्द्र द्वारा संचालित अनेक स्कूल थे। 4 जुलाई 1817 को कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी बनी। इस सोसाइटी ने अपने स्कूलों तथा श्रीराम पुर के मिशन केन्द्र के स्कूलों के लिए हिंदी, बंगला और अंग्रेजी भाषाओं में सर्वप्रथम पुस्तकें प्रकाशित की। श्रीरामपुर के मिशनरी (डॉ. विलियम कैरी, डॉ. विलियम वार्ड, डॉ. जोशुआ मार्शमैन आदि) प्रबुद्ध आधुनिक ज्ञान की प्रारम्भिक पुस्तकों को छापकर अपने छात्रों को ऐसे कितने ही विषयों से परिचित कराना चाहते थे जिन पर कोई पुस्तक नहीं मिलती थी। इस अभाव की पूर्ति के लिए उन्होने अप्रैल 1818 में एक पत्र निकालना आरम्भ किया। इसका अख्या पत्र (टाइटिल पेज) इस प्रकार था: 'दिग्दर्शन' अथवा 'दि इंडियन यूथ मैगजीन'। डा. जोशुआ मार्शमैन के पुत्र जान क्लार्क मार्शमैन (1764-1817) इसके सम्पादक थे। इन्होंने ही श्रीरामपुर के मिशनरियों का प्रामाणिक इतिहास दो खण्डों में लिखा है (लाइफ एण्ड टाइम्स आफ कैरी, मार्शमैन एण्ड वार्ड)।

'दिग्दर्शन' के सोलह अंक निकले थे। इसके हिंदी-बंगला, अंग्रेजी-बंगला और अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित होते थे। कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इसका प्रथम संस्करण बंगला में छपा था:

Of the Bengalee periodical work from the Scrampore press, stiled the Digdorshan, the Society has this year received 1000 copies Nos. 4 & 5, and 2000 of Nos. 6 and 7. of the first edition. Numerous attestations reaching your committee of the practical value of this work, not only for the use of schools but for the instruction of adults, and abundant evidence appearing of its being very acceptable to the natives, it was suggested to the Author, Mr. Marshman Jun to prepare a second and improved edition in a superior type, and render the work into English" (The second Report of the Calcutta School Book Societies proceeding, second year 1818-19, Calcutta 1819, page 5)

श्रीरामपुर के मिशनरी अपने कार्यों का वार्षिक विवरण लन्दन की बैपटिस्ट सोसाइटी को भेजते थे। उन्होंने अपनी 'दि सैकन्ड रिपोर्ट आफ दि इंस्टीट्यूशन फार दि रिपोर्ट एण्ड इंकेरेजमेंट आफ नेटिव स्कूल्स' (सन् 1818, श्रीरामपुर) में 'दिग्दर्शन' के हिंदी संस्करण का उल्लेख किया है। उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सन् 1818 तक इस पत्रिका के कम से कम पांच अंक निकल चुके थे।

कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी के दूसरे वर्ष सन् 1818-19 के विवरण में 'हिन्दी दिग्दर्शन' का उल्लेख है।

इसी वर्ष की रिपोर्ट के अपेन्डिक्स नम्बर 17, पृष्ठ 89 पर हिंदी लेखक टी. थाम्सन का पत्र छपा है 'लेटर फ्राम दि रेव्ह, टी· थाम्सन टू डब्लू· बी. बेली इस्क्वे, डेटेड बन्कूरा, फिफ्थ मार्च'। इस पत्र से ज्ञात होता है कि स्कूल में हिंदी दिग्दर्शन को पाठ्य पुस्तकों के रूप में प्रयुक्त किया जाता था।

यों हिंदी के प्रथम संपादक रेव्ह. डानिएल कोरी माने जाएंगे। डानिएल कोरी ने उत्तर भारत में लगभग दस स्कूलों की स्थापना की थी जिनमें से बनारस का जयनारायण स्कूल भी है। अनेक पाठ्य पुस्तकें स्वयं लिखी और दूसरों से लिखवाई थीं। इस विद्वान शिक्षा-शास्त्री के विषय में मैंने अन्यत्र लिखा है।

गास्पल-मैगजीन

'दिग्दर्शन' के बंगला संस्करण उपलब्ध हैं, पर अब तक हिंदी संस्करण की एक भी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी। गॉस्पल मैगजीन का एक पूरा अंक मुझे बड़े नाटकीय ढंग से, अकस्मात् प्राप्त हुआ। मैं ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी के ऑरियन्ट रीडिंग रूप में बैठा-बैठा 'दिग्दर्शन' के बंगला संस्करण की पुरानी जिल्दें देख रहा था। अचानक मुझे एक जिल्द के अंतिम पृष्ठों पर हिंदी भाषा में नागरी लिपि में मुद्रित पृष्ठ दिखे। मुझे प्रथम अनुभूति तो यह हुई कि ये हिंदी दिग्दर्शन के पृष्ठ हैं और मुझे मानो कुबेर का खजाना मिल गया। पर जब मैंने पृष्ठ के ऊपर शीर्षक देखा तो मेरा उत्साह बुझ गया। पर यह स्थिति भी अधिक देर तक नहीं रही। जब मैंने इस हिंदी पत्रिका का टाइटल पेज देखा तो मैं आनन्द के मारे उछल पड़ा: प्रकाशन तिथि सन् 1820। उदन्त मार्त्तण्ड सन् 1826-27 में प्रकाशित हुआ था, पर उसके छः सात वर्ष पहले "गास्पल मैगजीन" कलकत्ता से नियमित रूप से नागरी लिपि में प्रकाशित हो रही थी। मैं इस अंक की फोटो-प्रति लाया हूं।

कलकत्ता की बी. ए. एम. एस. (बंगाल आग्ज़ीलरी मिशनरी सोसाइटी) नामक संस्था ने 1819 के दिसम्बर महीने में द्विभाषायी पत्रिका (अंग्रेजी-बंगला) 'गास्पल मैगजीन' का प्रकाशन आरम्भ किया। इसका प्रथम अंक दिसम्बर महीने में कलकत्ता के धर्मतल्ला में स्थित स्कूल प्रेस से प्रकाशित हुआ। इस अंक में कुल सोलह पृष्ठ थे। लेखों का सूची-पत्र अंग्रेजी और बंगला भाषा में था : दि आरिजन आफ दि वीक, जीजस ए सैवीयर, प्यूरीफिकेशन आफ दि हार्ट, ए एडवान्टेज आफ अर्ली एजुकेशन, हिस्ट्री आफ क्राइस्ट, मिर्जापुर चेपल, इंटेलीजेन्स। 1 जनवरी 1820 से यह पत्रिका पूर्णतः बंगला भाषा में प्रकाशित होने लगी। अंक 8, जुलाई 1820 के विज्ञापन से ज्ञात होता है कि इस पत्रिका का नागरी संस्करण भी निकलता था।

यही विज्ञापन अंक 9, 10, 11, 12, 13 में पुनः प्रकाशित हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकला कि 'गास्पल मैगजीन' का अंग्रेजी संस्करण बन्दकर उसके स्थान पर हिंदी संस्करण प्रकाशित किया गया था। सन् 1820 में प्रकाशित हिंदी संस्करण का एक अंक उपलब्ध है। उसके लेखों की सूची शब्दशः इस प्रकार है : अन्तः करण के मालिन्यका विनाश, चौर्य्य वृत्ति, तारक यिशु, दुर्विचार नाश।

भाषा का नमूना दृष्टव्य है :

> कोइ समय में बंगदेशीय एक पंडित ने कहा जो ;
> स्वाभावो यादृशो यस्य
> न जहाति कदाचन ;
> अंगारः शत धौतेन
> मलिनत्व न मुज्जति,

इसका अर्थ, जिसका जैसा स्वभाव सो उसको कभी परित्याग करता नहीं ; देखो जैसे शतबार धोने से भी अंगार अपनी मालिन्यता को त्याग करता नहीं,

यह सुनके एक हिंदुस्तानी पंडित ने उत्तर दिया कि ऐसा नहीं, उस अगार का भी मालिन्य दूर होय सकता है ; जैसा,

> सदगुरु पावे भेद बतावे
> ज्ञान करे उपदेश,
> तब कोयलो का मैला छुटे
> जब अग्नि करे परवेश,

इसका अर्थ ; "उत्तम ज्ञानोपदेशक गुरु मिले, और वह जो भेद को नाश करके ज्ञान का प्रकर्ण भली प्रकार से बुझाय दे, तभी अन्तः करण निर्मल हो न सके ; जैसा कोयले में अग्नि का प्रवेश होने से अवश्य कोयले का मालिन्य दूर होय जाता है," (पृष्ठ 1-2)

आशा है, हिंदी साहित्य के इतिहासकार अपनी त्रुटि को सुधार लेंगे, और हिंदी के प्रथम पद के गौरव स्थान पर हिन्दी 'दिग्दर्शन' और 'गास्पल मैगजीन' को प्रतिष्ठित करेंगे। 'गास्पल मैगजीन' के आठ पृष्ठ मेरे पास सुरक्षित हैं।

द्वारा प्रो. एस. के. वार्न, सिलवर ओक कम्पाउंड,
नेपियर टाउन, जबलपुर, म. प्र.

आजकल का चन्दा

★ एक प्रति 1 रुपया 50 पैसे; वार्षिक 15 रुपये; द्विवार्षिक 27 रुपये तथा त्रिवार्षिक 38 रुपये मात्र।

★ छात्रों और अध्यापकों के लिए चन्दे में विशेष छूट। इसके लिये प्रमाणपत्र भेजना आवश्यक है।

★ आजकल के नियमित ग्राहकों को प्रकाशन-विभाग की 5 रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर 10 प्रतिशत छूट दी जाती है।

★ चन्दे एवं विज्ञापन तथा पत्रिका न मिलने की शिकायत भेजने का पता—व्यापार व्यवस्थापक, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

★ संपादकीय पत्रव्यवहार : संपादक 'आजकल' (हिन्दी), पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 387069

पुस्तक समीक्षा

कोने का मकान

'कोने का मकान' लेखिका—वीणा सेठ; प्रकाशक सस्ता साहित्य भण्डार, 57 बी, पाकेट, फेज 2 अशोक विहार, दिल्ली-110052; पृष्ठ संख्या—143; मूल्य—25 रु.

प्रस्तुत पुस्तक 15 कहानियों का संग्रह है जिसमें आज के सामाजिक पक्षों को उभारा गया है। विशेष रूप से स्त्रियों और बच्चों की ओर लेखिका की दृष्टि अधिक गई है। एक नारी का नारीत्व और ममत्व उसके जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं इसे लेखिका ने विश्लेषक सूक्ष्म दृष्टि, सहानुभूति और सहज स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है।

जहां तक कहानियों की कथा का सम्बन्ध है ये रेखाचित्र के अधिक निकट हैं, जिनमें रोचकता के साथ-साथ समाज कल्याण की प्रेरणा भी मिलती है। वास्तव में कहानियां हल्के मनोरंजन व साधारण पाठक के मस्तिष्क व मन को तो ताजगी देती हैं परन्तु बौद्धिकता व मनोवैज्ञानिकता के उच्च धरातल पर मन को शांति प्रदान करके बुद्धि की प्यास बुझाने में ये कहानियां उतनी सूक्ष्म नहीं हैं।

आम जिंदगी के जीते-जागते चरित्र ही इन कहानियों के पात्र हैं जिनसे हम रोज मिलते हैं जिन्हें हम रोज देखते हैं। 'वसन्ती' में जब वह बहन को बताती है कि "यामे गांव की बीरबानी और लरिकन को लत्ता सिखायें जावें। बालकन को भी लड़कियां पढ़ावें हैं।" इन पंक्तियों में गांव की कथा, भाषा व पात्र सभी कुछ है तो दूसरी ओर 'खुशी के आंसू' की मासूम बिट्टो का बच्चा न होने पर वह सोचती है—"ऐसी जिन्दगी से तो अच्छा है कि कुछ खाकर सो जाए।" कहानी की भाषा बहुत ही सरल और सुबोध है। आम पाठक इसे पढ़कर ताज़गी महसूस करेगा।

डा. (श्रीमती) उषा गोपाल
12/166 आर. के. पुरम, नई दिल्ली—110022

अपनी-अपनी सीमा

अपनी-अपनी सीमा, अभिमन्यु अनत, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, मूल्य 25 रुपए, पृ. सं. 147

'अपनी-अपनी सीमा' अभिमन्यु अनत का 'लाल पसीना' और 'शेफाली' के बाद नवीनतम उपन्यास है। 'लाल पसीना' एक उत्कृष्ट उपन्यास था, शिल्प, भाषा-शैली से लेकर पठनीयता तक। 'शेफाली' भी कुछ सीमाओं के बावजूद औसत दर्जे का उपन्यास था। श्री अनत का यह तीसरा उपन्यास है तथा पूरे उपन्यास को पढ़ लेने के बाद पाठक के हाथ कुछ भी नहीं लगता।

'अपनी-अपनी सीमा' दांपत्य जीवन में बंधे पति-पत्नी की कहानी है, येदो चरित्र हैं आलोक और सीमा। पूरे उपन्यास में पति-पत्नी का मानसिक संघर्ष या गृहस्थ जीवन की कशमकश या तनाव जैसा कोई बिन्दु नहीं है बल्कि आलोक का गुस्सा सीमा के ऊपर दर्शाया गया है। यह ठीक है कि आलोक की मनोभावनाओं से या उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया से ही यह साफ-साफ लगता है कि आलोक मध्यवर्गीय मानसिकता का युवक है किन्तु क्या मध्य-वर्ग इतना निर्मम होता है कि पत्नी को लातों, थप्पड़ों से या घूंसों से इस कदर मारता है? आलोक की पत्नी जब कभी घर गृहस्थी की चर्चा छेड़ती है तो वह उबल पड़ता है। पत्नी, सीमा का चरित्र ऐसा दिखाया गया है जो कहीं भी आलोक के प्रति गुस्सा या विद्रोह नहीं करती बल्कि वह सब कुछ सहती-झेलती चलती है और उसका अंत जिंदा हुआ है या वह मर गयी है इसका विचार लेखक ने पाठकों पर छोड़ दिया है।

उपन्यास में कमियों की भरमार है। लेखक ने सदा आलोक के चरित्र को जगह-जगह अमानवीय कुकृत्य करने वाले युवक के रूप में प्रदर्शित किया है। आलोक का गुस्सा जिस कारण हैउसका पूरा विश्लेषण उपन्यास में होना चाहिए। उपन्यास पति-पत्नी की समस्याओंको उठाता है किंतु सीमा को जितनी बार आलोक की ओर से प्रताड़नाएं मिलती हैं, उससे ऐसा नहीं लगता कि स्वाभाविक रूप से यह सब चल रहा है—यह बिलकुल अस्वाभाविक लगता है।

पूरे उपन्यास का कथानक बिखरा-बिखरा है। कथाकार कुछेक स्थलों पर भावानुरूप भाषा प्रयोग करता है किन्तु अधिक पृष्ठ व्यर्थ की बातों से भरे पड़े हैं। "आलोक ने अपनी फौलादी मुट्ठी से सीमा के कंधे पर अनसंवारे भीगे वालों को जकड़ लिया उसकी मां बीच में आती कि तब तक सीमा को बालों के बल खींचकर उसने उसे खम्भे से दे मारा···दोबारा उसी तरह झोंटा पकड़कर उसे ढकेला। इस बार सीमा का सर खंभे से टकराया। वह जमीन पर गिर पड़ी। आलोक ने झुमककर उसके चेहरे पर लात मारी। सीमा चीखी। फिर उसने दूसरी लात चला दी, इस बार लात उसके पेट में लगी···"

विश्वास नहीं होता कि एक सुशील व नम्र पत्नी के प्रति आलोक का ऐसा चरित्र 'स्केच' करके कथाकार क्या कहना चाहता है?

अभिमन्यु अनत का भाषा-प्रयोग भी काबिले तारीफ है—"चाय है या गाय का मूत" "तुम्हारे भीतर भी तो जो कुतिया बैठी हुई है वह तुमसे अधिक शक्तिशाली है।"

उपन्यास में कुछ और पात्र हैं जिनका प्रभाव कमोवेश पूरी कथा पर छाया रहता है। आरंभ में लेखक ने कुछ पात्रों से इन्टरव्यू भी किया है और स्वीकार किया है कि उपन्यास को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है किन्तु इसकी दर-असल कोई जरूरत नहीं थी। अगर इस उपन्यास को इसी रूप में लिखा जाना था तो इसके बिना भी काम चल सकता था। श्री अनत विदेश (मारीशस) में रहकर हिन्दी की सेवा कर रहे हैं और कथा जगत में उनका नाम आदर से लिया जाता है। इसलिए उनसे यह अपेक्षा सहज ही हो जाती है कि वे उम्मदा साहित्य लिखें।

—अमरेन्द्र मिश्र, 25 अंगद नगर
(वैस्ट), शकरपुर, दिल्ली-51

वातायन

बाल लेखक शिविर एवं कार्यशाला

—पृथ्वीराज मोंगा



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के तत्वावधान में सारनाथ (वाराणसी) स्थित उत्तर प्रदेश पर्यटक आवास गृह में पांच दिवसीय 'बाल लेखक शिविर एवं कार्यशाला' का 24 से 28 अगस्त 1984 तक आयोजन हुआ। इस शिविर एवं कार्यशाला का उद्घाटन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के मुख्य भवन में श्रद्धेया शरदबल्लभा बेटी द्वारा हुआ। उद्घाटन समारोह में ट्रस्ट के निदेशक डा. लोकनाथ भट्टाचार्य ने आमंत्रित विद्वानों का स्वागत किया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति डा. इकबाल नारायण विशेष अतिथि थे तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति डा. रामकरण शर्मा ने इस अवसर पर अध्यक्षीय भाषण दिया। शिविर एवं कार्यशाला के तकनीकी निदेशक श्री कृष्णचन्द्र बेरी थे।

इस बाल लेखक शिविर एवं कार्यशाला में हिन्दी, पंजाबी और उर्दू के बाल लेखकों को आमंत्रित किया गया था, जिनमें से कुछेक प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—डा. हरिकृष्ण देवसरे, डा. मस्तराम कपूर, श्री बालकराम नागर, डा. गुरदयाल सिंह फुल, डा. अमरीक सिंह पुन्नी, श्री मुजफ्फर हनफी और श्री अनीस मिर्जा। शिविर के दौरान आमंत्रित लेखकों द्वारा विभिन्न विषयों पर निबंध प्रस्तुत किये गये।

डा. मस्तराम कपूर ने अपने निबंध में इस बात पर दुःख प्रकट किया कि बच्चों को उनके मनोविकास के अनुकूल सामाजिक व्यवस्था प्राप्त नहीं हो रही है।

डा. देवसरे ने अपने निबंध में इस बात पर जोर दिया कि आज के संदर्भ में पारम्परिक पुराण-कथाएं, लोककथाएं और नीति-कथाएं उपयोगी नहीं हैं। आज बालक के लिए पंचतंत्र की कहानियां निर्णायक सिद्ध नहीं हो सकती। आगे चलकर डा. देवसरे ने बच्चों के लिए यथार्थवादी साहित्य को ही श्रेष्ठ माना।

उर्दू के बाल साहित्यकार श्री मुजफ्फर हनफी ने इस बात पर बल दिया कि आज का बाल साहित्य पुरानी दुनिया से भिन्न आज की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए।

शिविर के अतिरिक्त इस बार कार्यशाला का आयोजन भी किया गया था जिसमें हिन्दी, पंजाबी और उर्दू तीनों भाषाओं के नवोदित लेखकों ने भाग लिया।

उद्घाटन समारोह पर अपने स्वागत भाषण में ट्रस्ट के निदेशक डा. लोकनाथ भट्टाचार्य व संयुक्त निदेशक (प्रकाशन) डा. सैयद असद अली ने इस बात की घोषणा की कि देश की अन्य प्रमुख भाषाओं के बाल लेखकों के भी इस प्रकार के शिविर शीघ्र ही लगाये जाने की योजना है।

एच-17/2, मालवीय नगर नई दिल्ली-110017

संधान काव्य-संध्या

'संधान' की ओर से विगत 1 जुलाई को राजधानी में डा. श्याम सिंह शशि के जन्म दिवस पर एक काव्य संध्या का आयोजन किया गया। पटना से आये सुप्रसिद्ध कवि श्री राम गोपाल 'रुद्र' ने इसकी अध्यक्षता की।

डा. शशि ने अपने जन्म-दिन को आत्मविश्लेषण और आत्म-चिंतन का दिन बताते हुए, संपर्कशील जीवन से रोचक प्रसंगों के साथ काव्य-पाठ किया जो अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन पड़ा। नरेन्द्र सिन्हा ने अपने काव्य-संग्रह (मगर डूबा नहीं है बट वृक्ष) से जो कविताएं सुनाई उनकी खुले मन से सराहना की गई। डा. जीवन प्रकाश जोशी की शायरी ने सभी का मन छुआ और 'रुद्र' जी की कविताओं के जीवन्त और ताजे रोमानी भाव-बोध ने श्रोताओं का मन बांधा—विशेषकर उनके द्वारा किया गया सस्वर पाठ मंत्र-मुग्ध होकर सुना गया। जिन अन्य कवियों ने काव्य-पाठ किया उनमें प्रमुख थे डा. मोतीलाल जोतवाणी, विजय, सुशील, सुरेश तिवारी, सुरेश नीरव, अशोक मलिक, अश्विनी, महेश अनुज, प्रेमपाल शर्मा एवं जयकिशन कौशिक अन्य गणमान्य व्यक्तियों में डा. कमल किशोर गोयनका, नोरेन सिंह एवं हरीश आनन्द प्रमुख थे।

काव्य-गोष्ठी का संचालन सुरेश यादव ने किया। इसी अवसर पर 'संधान' के अंक 11 का विमोचन भी हुआ।

—सुरेश चन्द्र यादव,
52, अधचिनी, अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110017



कन्हैयालाल नंदन पुरस्कृत

पिछले दिनों हिमाचल प्रदेश के लोकायुक्त न्यायमूर्ति श्री टी. वी. आर. ताताचारी ने टाउन हाल, शिमला के एक भव्य समारोह में ऑल इण्डिया आर्टिस्ट्स एसोसियेशिन की ओर से पत्रकारिता के लिए प्रतिवर्ष दिया जाने वाला "भारतेंदु हरिश्चन्द्र एवॉर्ड" सुपरिचित कवि, समीक्षक और पत्रकार श्री कन्हैयालाल नन्दन को और कथा साहित्य के लिए दिया जाने वाला "पीपुल्स एवॉर्ड" युवा कथाकार श्री बलराम को समर्पित किया। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि क्षेत्रीय और सांप्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठकर रचनाकारों को व्यापक मानवीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। सामाजिक सरोकारों से लैस रचनाकार यदि समाज को रास्ता दिखा सकते हैं तो व्यावसायिक दृष्टि अपनाकर वे समाज को पथभ्रष्ट भी कर सकते हैं। अपने स्वागत भाषण में श्री सुदर्शन गौड़ ने संस्था की गतिविधियों पर प्रकाश डाला। संस्था प्रतिवर्ष अखिल भारतीय नाट्य प्रतियोगिता आयोजित करती है। जिसमें देश के प्रायः सभी भागों के नाट्यदल हिस्सा लेते हैं। पत्रकारिता और साहित्य के लिए इससे पहले संस्था सर्वश्री खुशवन्त सिंह, कुलदीप नैयर, अरुण शौरी, विष्णु प्रभाकर, मन्नू भंडारी और केशव को सम्मानित कर चुकी है।

प्रेषक : तुलसी रमण, द्वारा श्री केशव,
पाइन हिल कॉटेज, शिमला-171002

पुरस्कारों की नई श्रृंखला

पिछले लगभग पच्चीस वर्षों से संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों को लेकर भारत में कार्य कर रहे संगठन 'यूनाईटेड नेशन्स कौंसिल ऑफ इण्डियन यूथ' ने सन् 1982 से एक राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार की योजना दिनांक 26 अगस्त, 84 को घोषित की जिसमें निर्णय लिया गया कि देश के हित और सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने वालों को स्वर्ण पदक दिए जायेंगे।

वर्ष 1982-83 में साहित्य के क्षेत्र में 'ज़ोरमथांगी' (अंग्रेजी उपन्यास) के लेखक श्री प्रमोद भटनागर को पुरस्कृत करने की घोषणा की गई। इस उपन्यास में सीमांत प्रदेश मिजोरम की आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों का विवेचनात्मक वर्णन किया गया है। अपनी प्रशासकीय दृष्टि और अनुभव संपन्नता से लेखक ने मिजोरम की विकट समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है एवं उसके समाधान की संभावनाओं को रेखांकित किया है।

साहित्य के क्षेत्र में वर्ष 1983-84 में हिंदी कवि श्री श्रीकांत वर्मा को उनकी काव्य कृति 'प्रसंग' के लिए पुरस्कृत करने की घोषणा की गई।

वर्ष 1983-84 में ही शैक्षणिक एवं सामाजिक क्षेत्र में प्रचुर कार्य के लिए श्री एम. एम. अग्रवाल को एवं औद्योगिक क्षेत्र में प्रवासी भारतीयों को स्वदेश के औद्योगिक विकास की ओर आकृष्ट करने में पहल करने वाले श्री स्वराज पाल को स्वर्ण पदक देने की घोषणा की गई।

श्री एम. एस. अग्रवाल उत्तर प्रदेश में चौबीस कालेजों का संचालन करने वाली डी. ए. वी. संस्था के सचिव होने के साथ-साथ ऐसे पब्लिक स्कूलों का भी संचालन कर रहे हैं जिनमें बिना शुल्क कमज़ोर वर्ग के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। श्री अग्रवाल 'नेशनल हेरल्ड' समाचार पत्र-समूह के वित्त निदेशक हैं एवं कई प्रमुख समाज सेवी संगठनों में सक्रिय रूप से कार्यरत हैं।



एम. एम. अग्रवाल और श्री स्वराजपाल

पुरस्कार के लिए श्री स्वराज पाल का चयन औद्योगिक क्षेत्र में उनकी अभूतपूर्व सफलता के साथ-साथ प्रवासी होते हुए भी स्वदेश के औद्योगिक विकास में सक्रिय रुचि को देखते हुए किया गया है।

—कैलाश खोसला

मेवाड़ चित्रकला के क्रमिक विकास पर व्याख्यान



माइक पर डा. श्रीधर अंधारे

लखनऊ में ललित कला अकादमी ने डॉ. राधाकमल मुकर्जी स्मृति व्याख्यानमाला का आयोजन 4 और 5 अगस्त को किया। व्याख्यानदाता थे लालभाई दलपतभाई संग्रहालय, अहमदाबाद के निदेशक डॉ. श्रीधर अंधारे और विषय थे "मेवाड़ चित्रकला की क्रमबद्धता" तथा "कलाकार, उनकी स्थिति और वंशवृत्त"।

व्याख्यान के प्रथम दिन अकादमी के अध्यक्ष डॉ. आनन्द कृष्ण ने अपने स्वागत भाषण में राजधानी चित्र शैली की रूप-रेखा पर प्रकाश डालते हुए बताया कि राजस्थानी चित्रकला एक बहुत बड़ा अनुभव है जिसने जैन अपभ्रंश कला शैली को एका-एक तोड़ा। जिससे वैचारिक सांस्कृतिक क्रांति का युग आया। तभी राजस्थानी शैली का जन्म हुआ। अपभ्रंश की जो बंधी बंधाई भावनायें थीं उसे सूरदास ने तोड़ा ब्रज भाषा के माध्यम से। राजस्थानी कलाकारों ने ब्रज भाषा साहित्य को चित्रित किया। मेवाड़ शैली राजस्थानी चित्रकला का मेरुदण्ड है।

डॉ. अंधारे का व्याख्यान उनके शोधग्रन्थ पर आधारित था। उन्होंने बताया कि राणा कुम्भा के समय से ही कला और साहित्य का केन्द्र मेवाड़ रहा है। हालांकि यवन आक्रमणों ने इस कला सस्कृति को बार-बार क्षति पहुंचायी, परन्तु उसको नष्ट नहीं किया जा सका।

श्री कृष्ण नारायण कक्कड़ ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा कि डॉ. अंधारे 13 वीं शताब्दी से जगन्नाथ के चित्रों तक आये हैं। पहले जो चित्र एक आयाम में था वह 18वीं शताब्दी तक आते आते बहुआयामी हो गया।

अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए राज्य संग्रहालय, लखनऊ के निदेशक डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा ने कहा कि हम पहले इस क्षेत्र में अकबर से पूर्व नहीं जा पाते थे। पर अब जो शोध हुए हैं उन्हें डॉ. अंधारे ने बहुत सूझ-बूझ के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होने यह तथ्य भी उजागर किया कि राज्य संग्रहालय, लखनऊ में भी मेवाड़ चित्र शैली के चित्र सुरक्षित हैं।

— घनश्याम रंजन
65 कैंट रोड, उदय गंज, लखनऊ-226001

पं. रामचन्द्र शुक्ल पर लिखित पुस्तक का विमोचन

हिमाचल भवन, नयी दिल्ली में गत 8 सितम्बर, को साहित्य निधि द्वारा प्रकाशित डा. कृष्णदत्त पालीवाल की नवीन पुस्तक 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का चिन्तन जगत्' का केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक श्री राजमणि तिवारी ने विद्वानों और कवि-कलाकारों के बीच विमोचन किया। इस समारोह की अध्यक्षता 'दिनमान' के सम्पादक और कवि-समीक्षक श्री कन्हैया लाल नन्दन ने की तथा मंच-संचालन-कार्य डा. कमलकिशोर गोयनका ने किया।

श्री राजमणि तिवारी ने इस पुस्तक पर विस्तार से विचार करते हुए कहा कि रामचन्द्र शुक्ल पर लिखी गई इस पुस्तक का महत्व न केवल उनके कवि, जीवनीकार, अनुवाद, भाषा-चिन्तक, इतिहासकार, निबन्धकार, सम्पादक, साहित्य शास्त्रकार आदि रूपों की विविधता के विवेचन के कारण है—बल्कि इस कारण भी है कि यह पुस्तक पुराने तथ्यों का नवीन सन्दर्भ में स्पष्टता से व्याख्यान-विवेचन करती है।

अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल नन्दन ने कहा, कि डा. पालीवाल एक लम्बे समय से आचार्य शुक्ल पर जमकर कार्य करते रहे हैं—और यह कार्य उसी श्रम का सीधा नमूना है। इस अवसर पर डा. रामदरश मिश्र, अजितकुमार, डा. विनय और डा. कमल किशोर गोयनका ने अपने विचार प्रकट किए।

— कुसुम
ए-98 अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052



सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रदेश के सूचना मंत्री अब्दुल रहमान खां 'नश्तर'

हिन्दी समाचार पत्र समाज की प्रसंशनीय सेवा कर रहे हैं

लखनऊ गत 14 सितम्बर को स्थानीय रेलवे इंस्टीट्यूट में हिंदी दिवस के उपलक्ष में हिंदी पत्रकार संघ ने अपना छठवां वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन में प्रदेश के विभिन्न अंचलों से आये हिंदी पत्रकार व हिंदी प्रेमियों ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन प्रदेश के सूचनामंत्री श्री अब्दुल रहमान खां 'नश्तर' ने किया तथा समारोह की अध्यक्षता संघ के अध्यक्ष श्री विश्वमित्र शर्मा ने की।

अपने मुख्य अतिथि भाषण में बोलते हुए श्री नश्तर ने कहा कि हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है और अगर देश को एक सूत्र में बांधना है एवं एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण करना है तो हिंदी देश के प्रत्येक नागरिक को सीखनी होगी और इस कार्य को हिंदी अखबार ही कर सकते हैं। इस समारोह में हिंदी के प्रति समर्पित समाज सेवियों को प्रसंशा पत्र देकर सम्मानित किया गया, उपाधियों से विभूषित किया गया तथा दुशाला भेंट किए गए। सम्मानित महानुभावों में श्री शिवसिंह सरोज को साहित्यकार मार्तण्ड की उपाधि से श्री यज्ञ देव पण्डित को पत्रकार गौरव की उपाधि से श्री सत्य प्रकाश गुप्ता को राष्ट्र गौरव की उपाधि से तथा श्रीमती भारती गांधी को शिक्षाविद् की उपाधि से विभूषित किया गया। उक्तचारों महानुभावों को प्रदेश के कृषि मंत्री चौ. यशपाल सिंह ने सम्मानित किया।

समारोह के महामंत्री श्री रामेश्वर दत्त शर्मा ने कहा कि हिंदी पत्रकार संघ हिंदी के प्रति व राष्ट्र के प्रति समर्पित है और हम हिंदी के द्वारा राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने का प्रयास कर रहे हैं।

— कृष्ण कुमार श्रीवास्तव
लक्ष्मन निवास, 19 क, बहादुर खेड़ा, आलमबाग,
लखनऊ-226005

स्व. पराड़कर के सम्मान में डाक-टिकट

— सूर्यकान्त त्रिपाठी

भारत के उपराष्ट्रपति श्री रामस्वामी वेंकटरामन ने गत दिनों वाराणसी में डाक-तार विभाग द्वारा मूर्धन्य पत्रकार और सम्पादक स्व. बाबूराव विष्णु पराड़कर की स्मृति में जारी डाक-टिकट का विमोचन किया। इस अवसर पर पराड़कर जी के त्याग और सेवाओं का स्मरण करते हुए श्री वेंकटरामन ने कहा कि सुब्रमण्यम भारती और पराड़कर जी जैसे लेखकों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि कलम तलवार से अधिक ताकतवर होती है। हिंदी पत्रकारिता के भीष्म पितामह विष्णु पराड़कर ने राष्ट्र की मुक्ति और समाज की उन्नति के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया। मूलतः मराठी होते हुए भी हिंदी भाषा को राष्ट्र-भाषा का स्वरूप देने में उन्होंने अपूर्व योगदान दिया। अन्य भाषाओं से उदारतापूर्वक शब्दों का समावेश पराड़कर जी ने हिंदी में किया। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को समृद्ध किया।

विमोचन समारोह में पराड़कर संग्रहालय के निदेशक लक्ष्मीशंकर व्यास ने कहा कि पराड़कर जी के एक हाथ में कलम

डाक टिकट का विमोचन करते हुए उपराष्ट्रपति आर. वेंकटरमण (दांये) और केन्द्रीय राज्य संचार मंत्री विट्ठल गाडगिल (बांएं)



तथा दूसरे में पिस्तौल रहती थी। तमाम दबाओं और उत्पीड़नों के बावजूद वे कलम के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदार रहे। इस अवसर पर श्री व्यास ने उपराष्ट्रपति को पराड़कर जी के स्वतंत्रता-संग्राम संबंधी सम्पादकीय लेखों का संग्रह-ग्रन्थ भेंट किया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए केन्द्रीय संचार मंत्री श्री विठ्ठल गाडगिल ने पराड़कर जी की पत्रकारिता को सत्य का उपासक बताया।

—पत्र सूचना कार्यालय (भारत सरकार) कबीर मार्ग, वाराणसी-221001

राजभाषा हिन्दी के प्रति झिझक समाप्त करें



पिछले दिनों वाराणसी नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की अर्द्धवार्षिक बैठक भारत सरकार, राजभाषा विभाग के संयुक्त सचिव श्री देवेन्द्र चरण मिश्र के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुई जिसमें श्री मिश्र ने कहा कि हिन्दी की प्रगति, प्रचार और प्रसार प्रजातांत्रिक तरीके से ही सम्भव है। भारत सरकार ने हिन्दी की प्रगति के लिये कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं जिनमें कई प्रकार की प्रोत्साहन योजनायें तथा हिन्दी में अधिकाधिक काम करने वाले कर्मियों को नगद पुरस्कार देना भी शामिल है।

पूर्वोत्तर रेलवे, वाराणसी के उप मण्डलीय रेल प्रबंधक श्री रामअवध पाण्डेय का विचार था कि गंगोत्री हिमनद से निकला गंगाजल जिस प्रकार शुद्ध होता है उसी प्रकार सरकारी विभागों के उच्च अधिकारी यदि हिन्दी में कार्य करें तो अधीनस्थ कर्मी भी इससे प्रोत्साहित होंगे। बैठक में अधिकांश वक्ताओं का मत था कि अंग्रेजी के प्रति अपनी मानसिकता और रूझान बदलकर हमें हिंदी के प्रति अपनी झिझक समाप्त करनी होगी तभी राजभाषा का प्रयोग सभी स्तरों पर हो सकेगा।

—बीना त्रिपाठी
—शेरपुर, नरायनपुर, मिर्जापुर-231305

सांप्रदायिक एकता पर विचार गोष्ठी

हिन्दी साहित्य परिषद, मऊनाथ भंजन में हिन्दू मुस्लिम एकता और साहित्यकार की भूमिका विषय पर एक विचार गोष्ठी हुई, जिसकी अध्यक्षता प्रख्यात कथाकार विवेकीराय ने की। इस अवसर पर युवा कथाकार बलराम ने कहा कि साहित्यकार आम जनता की भांति ही सामान्य आदमी होता है। लेखक जो कुछ भी लिखता है, वह लेखक का अपना नहीं होता, बल्कि उसे वह समाज से लेता है और पुनः समाज को वापस कर देता है।

डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने भाषण में कहा कि भारतीय और इस्लाम दर्शन में बहुत अधिक साम्य है और जो अन्तर कालांतर में आया है, वह जानबूझ कर पैदा किया गया है। आदम और हौवा के पैदा होने की बात भारतीय ग्रंथों में पहले ही उल्लिखित है तथा भविष्य पुराण में हजरत मुहम्मद के पैदा होने का उल्लेख है हमारे उपनिषदों का अद्वैतवाद और इस्लाम का सूफी दर्शन वास्तव में एक ही हैं।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा. विवेकीराय ने कहा कि उनके मस्तिष्क में रौटरी क्लब का अर्थ कुछ सुविधा जीवी लोगों के मोज-मस्ती का स्थल था, लेकिन इस समारोह में आकर जब मैंने यह सुना कि इसने गिरते हुए नैतिक मूल्यों को पुनः जीवित करने, बुनकरों की समस्याओं का समाधान करने और प्रसिद्ध साहित्यिकारों की व्याख्यान माला का आयोजन करने की योजना बनायी है तो मुझे आश्चर्यमिश्रित खुशी हो रही है। इसी अवसर पर कथाकार शिवमूर्ति को रोटरी क्लब का अध्यक्ष चुना



गोष्ठी को संबोधित करते हुए सारिका के उप सम्पादक श्री बलराम

गया, जिन्होंने मऊनाथ भंजन में अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन की योजना प्रस्तुत की।

प्रस्तुतिः उत्तम चंद द्वारा शिवमूर्ति, बिक्रीकर अधिकारी, मऊनाथ भंजन, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

न्यूजीलैंड की लेखिकाओं का दिल्ली में स्वागत

आथर्स गिल्ड आफ इंडिया, दिल्ली चैप्टर ने भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली के सभागार में 22 सितम्बर, 84 की संध्या को न्यूजीलैंड की दो लेखिकाओं—कु. जीन वाटसन तथा श्रीमती जॉय कौले का स्वागत किया। दिल्ली चैप्टर के संयोजक डा. सत्यभूषण वर्मा ने कार्यक्रम का संचालन किया तथा आथर्स गिल्ड के अध्यक्ष डी. आर. मनकेकर एवं महामंत्री राजेन्द्र अवस्थी ने दोनों लेखिकाओं का स्वागत किया।

कु. जीन वाटसन न्यूजीलैंड की प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कवयित्री हैं। उनके, 'बैलून वाचर्स' और 'वर्ल्ड इज़ एन ऑरेंज इन दि सन' शीर्षक उपन्यास बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। श्रीमती जॉय कौले उपन्यासकार एवं बाल साहित्यकार हैं। श्रीमती कौले के दो उपन्यास 'नेस्ट इन ए फालिंग ट्री' एवं 'मैन आफ स्ट्रॉ' छप चुके हैं और उन्हें कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। श्रीमती कौले के अपने भाषण में न्यूजीलैंड के लेखकों की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वहां का समाज अलगाव और अकेलेपन की भीषण समस्या से पीड़ित है। मेरे पूर्वज स्काटलैंड से आये थे और मेरी कोई सांस्कृतिक विरासत नहीं है। इस सांस्कृतिक विरासत के अभाव में हम अकेले हैं और इससे संतप्त हैं। उन्होंने अपने देश की प्रकाशन स्थिति पर भी प्रकाश डाला और बताया कि न्यूजीलैंड के लेखकों की अधिकांश किताबें अमरीका, इंग्लैंड में छपती हैं और पहले संस्करण में कम से कम पांच हजार प्रतियां छापी जाती हैं।

न्यूजीलैंड की ये दोनों लेखिकाएं भारत के अध्यात्म, कला एवं नृत्य का अध्ययन करने के लिए आयी हैं। ये लगभग 75 दिन भारत में रहेंगी और न्यूजीलैंड लौटकर संयुक्त रूप से भारत पर पुस्तक लिखेंगी।

—कमल किशोर गोयनका
ए/98 अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052

(आवरण पृष्ठ 2 का शेष)

प्रदर्शनी में राजस्थान का लोकजीवन अपने पूरे सौन्दर्य के साथ जीवन्त रूप में प्रस्तुत हुआ है। लोकजीवन में सिर्फ सौंदर्य की तलाश इस प्रदर्शनी की कमजोरी भी है। लोकजीवन में सिर्फ सौंदर्य ही नहीं है बल्कि अपनी भाषा, संस्कृति और अस्मिता के लिए प्रतिदिन लोक द्वारा किया जाने वाला साहसपूर्ण संघर्ष भी है। लोकजीवन का यह पहलू इस प्रदर्शनी में कहीं भी नहीं दिखता। संघर्ष के इस पक्ष को छोड़ने वाले रमेश अकेले चित्रकार नहीं है, बल्कि लोकजीवन पर काम करने वाले प्रायः सभी चित्रकार इस दोष के शिकार हैं। ऐसा नहीं है कि लोकजीवन पर काम करने वाले चित्रकार लोकजीवन की फटेहाली दरिद्रता, अशिक्षा को अपनी विषय-वस्तु न पाने के पीछे इन चित्रकारों की कोई मजबूरी है बल्कि यह है कि ऐसी कलाकृतियां आसानी से बिकती नहीं हैं, जबकि लोकजीवन के सौंदर्य वाले पक्ष को ये चित्रकार आसानी से बेच लेते हैं। कलाकारों की सामाजिक गारंटी न होने की वजह से भी यह प्रवृत्ति चित्रकारों में मिलती है।

अपनी उपरोक्त कमजोरी के बावजूद भी पिछले दिनों राजधानी में हुई कला-प्रदर्शनियों में यह प्रदर्शनी विशेष महत्व रखती है। यथार्थवादी कलाधारा का विरोध करने वाले और अमूर्तन की वकालत करने वाले चित्रकारों और समीक्षकों को इस प्रदर्शनी से अवश्य सीख लेनी चाहिए।

—594, मालवीय नगर, इलाहाबाद-3

(आवरण पृष्ठ 3 का शेष)

प्रस्तुतियों को अपने मंजे हुए अभिनय द्वारा नया आयाम दिया, वहीं पर परिवार-समाज और देश की विभिन्न समस्याओं का समाधान दर्शाते यह नाटक कई रोचक तत्वों से परिपूर्ण थे। इन्हें देखकर जहां दर्शकों तक ने यह माना कि—"ऐसे नाटकों से ही पंजाबी रंगमंच की अश्लील-दीवार तोड़ी जा सकती है।" वहीं पर सरकारी स्तर पर पंजाबी नाटकों के शुद्धिकरण का यह प्रयास प्रशंसनीय और वंदनीय है।

पुरस्कार वितरण-समारोह में अकादमी द्वारा सर्वोत्कृष्ट नाटककार के लिए डा. सी. डी. सिद्धू को तथा सर्वोत्तम निर्देशन के लिए कंवल विद्रोही को पुरस्कृत किया गया। श्रेष्ठ अभिनेताओं में जो. एस. जोगी, दिलबाग राय तथा प्रवेश सेठी को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसी तरह श्रेष्ठ अभिनेत्रियों में क्रमशः पहला, दूसरा और और तीसरा पुरस्कार पाया—दमयंती पुरी, बीना सिद्धू और सुचित्रा गुप्ता ने।

कुल मिला कर पंजाबी-अकादमी की यह पहल इस लिये भी सराहनीय है कि अच्छे नाटकों तथा अच्छे कलाकारों की टीम लेकर अकादमी ने पंजाबी रंगमच पर उतर रहे अंधेरों के ख़िलाफ़ एक सार्थक लड़ाई लड़ी और जीती है।

—जगदीश चावला
632/24 रंगमहल, दरियागंज, नयी दिल्ली-210002

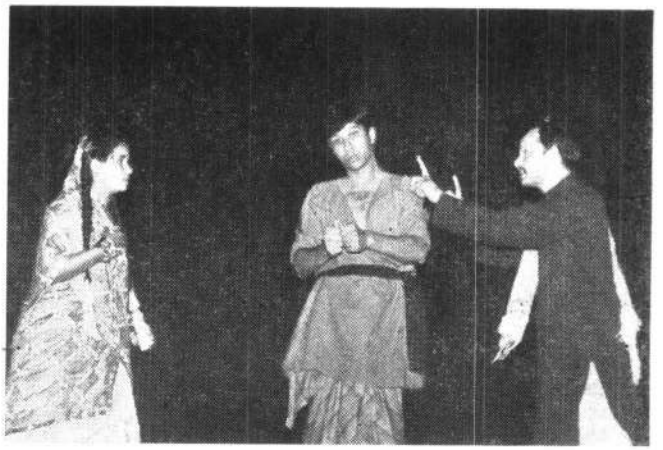
पंजाबी नाटकों में सुखद हवा का झोंका

पिछले कुछ वर्षों से पंजाबी-नाटक इतनी हद तक बदनाम हो चुके थे कि हर व्यक्ति इनके विषय में यही दृष्टिकोण अपनाने लगा था कि सप्रू-हाउस दिल्ली में खेले जाने वाले ये पंजाबी नाटक इस कदर भौंड़े, अश्लील और बेहूदा हैं कि इनके बार-बार देखने से पंजाबी संस्कृति, कला और साहित्य भी अपनी पहचान खो सकते हैं।

पंजाबी थियेटर को समर्पित शन्ना खुराना, शीला भाटिया, बलवंत गार्गी, जी. एस. जसूजा, आर. जी. आनद तथा जी. एस. खोसला जैसे प्रतिष्ठित रंगकर्मियों की रंग निष्ठाएं भी इस तरह के सैक्सी, दोहरे अर्थों के संवादों से भरपूर और फूहड़ मुद्राओं वाले नाटकों को देखकर चिंता के सागर में डूब गई थीं। और पंजाबी के कई उत्साही रंग कर्मी 'चढ़ी जवानी बुड्ढे नूं', 'चस्का दूजी दा, हलवा सूजी दा', और बुड्डी 'घोड़ी लाल लगाम' जैसे अश्लील नाटकों की टिकट खिड़की पर 'हाउस-फुल' का बोर्ड लगा देखकर कई खुलकर यहां तक कहने लगे कि-"पंजाबी नाटकों में पनपी यह पैसा कमाऊ नीति ही एक दिन पंजाबी-रंगमंच की मौत का कारण बनेगी।"

पंजाबी रंगमंच में फैल रही अश्लीलता को रोकने के लिए लगाई गई सेंसरशिप भी ज्यादा कारगर दवा सिद्ध नहीं हुई और तब मंच की अश्लीलता का पागलपन उतारने के लिए कुछ ऐसी समर्पित संस्थाओं ने आगे आना स्वीकार किया, जिन्हें वास्तव में पंजाबी-कल्चर और कला के प्रति गहरी दिलचस्पी और आस्था है।

ऐसी ही कुछ संस्थाओं में अग्रणी **'पंजाबी अकादमी, दिल्ली प्रशासन'** के तत्वाधान में 17 से 22 सितम्बर 84 तक कमानी हाल में पंजाबी नाटकों का एक श्रृंखला-बद्ध भव्य-समारोह आयोजित किया गया और सार्थक रंगकर्म की दिशा में यह



सुआमी जी का एक दृश्य

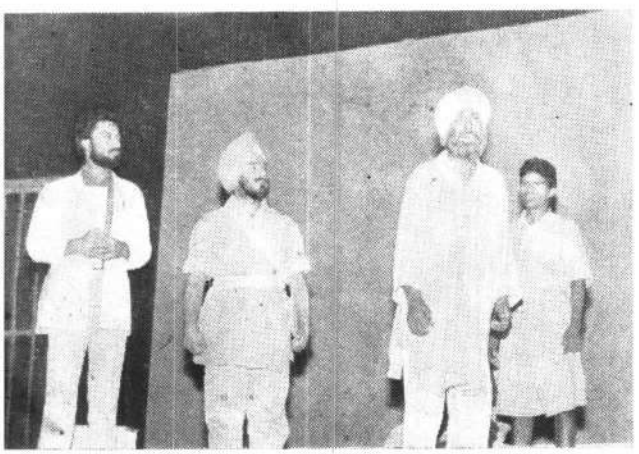
प्रयोग 'एक सुखद हवा के झोंके' की तरह से माना और सराहा गया।

पंजाबी अकादमी 'थियेटर फैस्टीवल-1984' के अन्तर्गत मंचित किये गये नाटकों में दिल्ली नाट्य संघ द्वारा रेवती शरण शर्मा के निर्देशन में डा. सी. डी. सिद्धू का नाटक-'कल कालेज बंद रवेगा,।' लोक कला मंच द्वारा आत्मजीत सिंह का लिखा और कला विद्रोही का निर्देशित नाटक 'रिश्तेयां दा की रखिए नां', थियेटर पैनोरमा द्वारा गुरचरण सिंह जसूजा का लिखा तथा निर्देशित नाटक 'कदां रेत दिया', कालिजियेट ड्रामा सोसाइटी द्वारा डा. सी. डी. सिद्धू द्वारा लिखित तथा निर्देशित-'सुआमी जी', विकल्प द्वारा प्रेम जालंधरी के लिखे तथा जे. एन. कौशल के निर्देशित नाटक-'छोटी मछली-वड्डी मछली, के साथ-साथ दिल्ली आर्ट थियेटर के कलाकारों द्वारा अमृता प्रीतम की कविताओं पर नाटक 'कागज़ ते कैनवस' का सफल मंचीकरण किया गया। इस संगीतमय नाटक की निर्देशिका थीं—शीला भाटिया।

शौकिया और व्यवसायिक कलाकारों ने जहां इन सभी

(शेष पृष्ठ 56 पर)

रिश्तेयां दा की रखिये नां



कल कालेज बन्द रवेगा



निदेशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल आफसैट वर्क्स, नई दिल्ली-5 में मुद्रित

डाक तार पंजीयन सं० डी० (डी०एन०) 105 बिना पूर्व भुगतान के सिविल लाईन डाक घर में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी० एन०)-49 प्राप्त आर० एन० 701/57

P & T. Regd. No. D (DN)/105
Licenced U (DN)-49 to post without pre-payment at Civil Lines Post Office. Delhi. R.N. 701/57



"अगर मैं देश की सेवा करते हुए मर भी जाऊं तो भी मुझे इस बात का गर्व होगा। मुझे उम्मीद है कि मेरे खून की हर बूंद इस देश की प्रगति के काम आएगी और इसे मजबूती तथा गति प्रदान करेगी।"

30 अक्तूबर 1984

– श्रीमती इंदिरा गांधी

वि 84/170